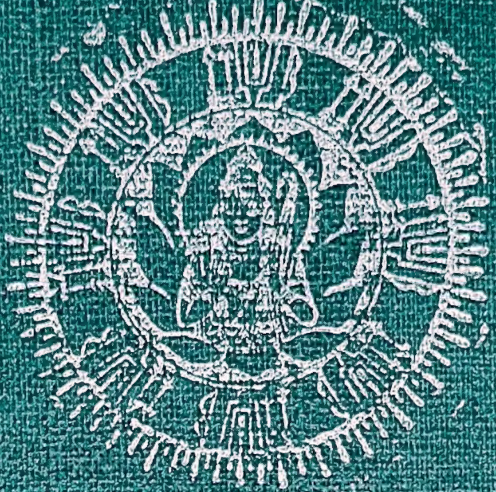

जगद्गुरु त्रिदण्डिग्रन्थमालाया द्वादशपुष्पम्

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

॥ प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमः ॥

श्रीरामानन्दसम्प्रदायस्योनचत्वारिंशत्तमाचार्य

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यविरचिता

श्रीरघुवरीयवृत्तिः

जगद्गुरु श्री त्रिदण्डिग्रन्थमालाया द्वादशपुष्पम्

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

॥ प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमः ॥

श्रीरामानन्दसम्प्रदायस्योनचत्वारिंशत्तमाचार्य

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यविरचिता

श्रीरघुवरीयवृत्तिः

(ब्रह्मसूत्रीय वेदान्तवृत्तिः)

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्र प्रणीत

तात्पर्यदीपाख्यविवरणेन

स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीत

सारबोधिन्या च सनाथिता

संशोधकः–प्रकाशकश्च

स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यः

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठाधीशः

श्री विश्रामद्वारका--श्रीशेत्रमठ

पोरबन्दर--सौराष्ट्र

सर्वाधिकार सुरक्षितः

गुरुपूर्णिमा

श्रीरामानन्दाब्द ६८२]   [विक्रमाब्द २०३९

प्राप्तिस्थान– श्रीरामानन्दपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ पो० पालडी सरखेजरोड़--अहमदाबाद--३८०००७ (गुजरात)

२-- आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ शंकुधारा वाराणसी--२२१०१०

मुद्रक : श्रीरामनन्द प्रिन्टिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद–२२

वृत्तिकार श्री रामानन्द सम्प्रदाय के ३९ वें आचार्य

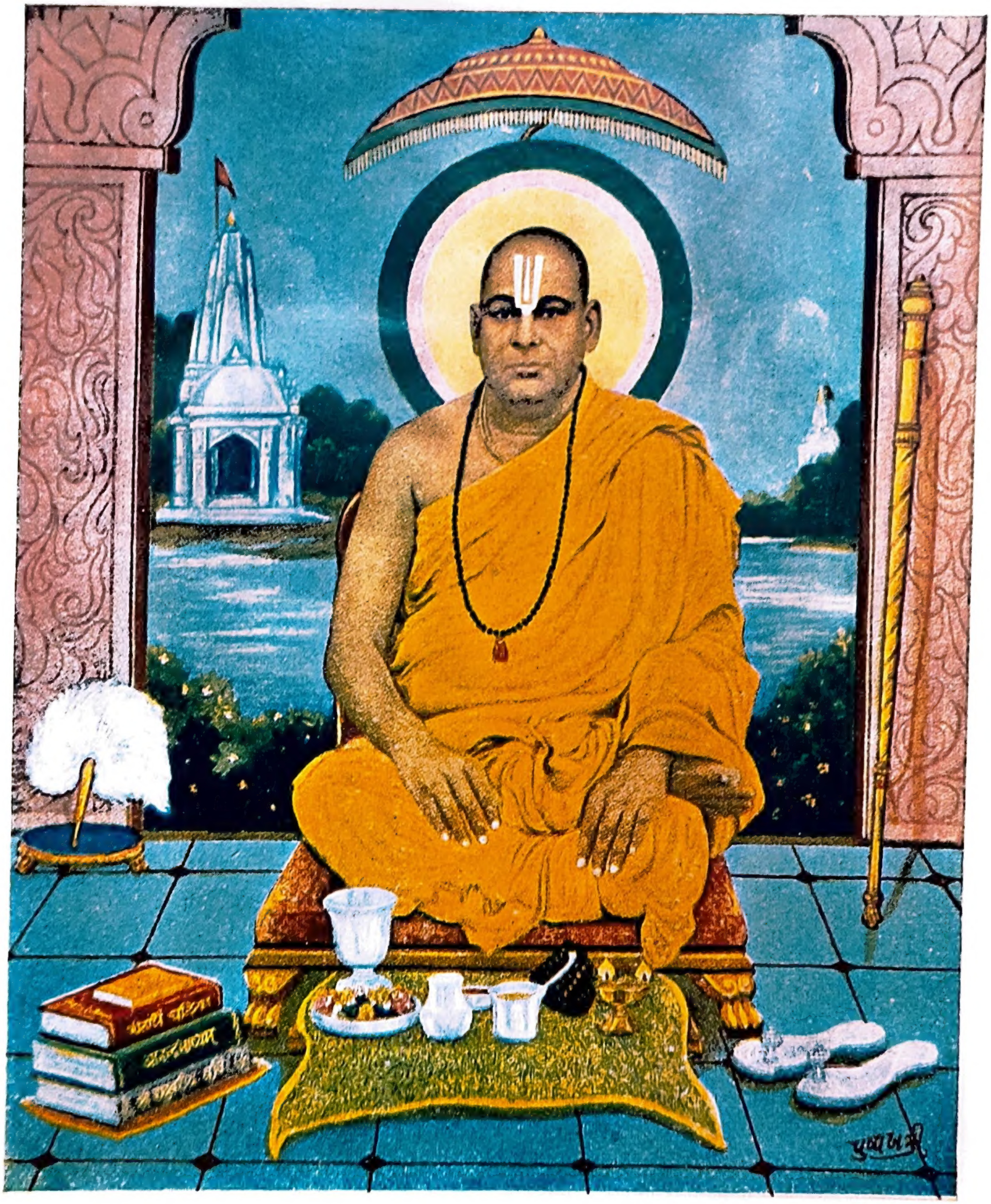

महामहोपाध्याय

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी रघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी

आविर्भाव १९४३ तिरोभाव २००७ विक्रम

॥ श्री हनुमते नमः ॥

वृत्तिः

वृत्ति शब्द की सिद्धि "स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४" इस पाणिनीय सूत्र से वर्त्तते अनया इस व्युत्पत्ति में वृत धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर निस्पन्न होना बतलाई है। मेदिनीकार कहते हैं "वृत्तिर्विवरणाजीवकैशिक्यादिप्रवर्त्त ने ५८।६०" अमरकोषकार जीविका–वेतन अर्थ बता रहे हैं तो मेदिनीकार विवरण के साथ अन्यान्य कोशकारों ने अनेक अर्थ का उल्लेख किया है उन्हीं में "भाष्य, टीका, विवृति, जटिलटीका जिसकी व्याख्या करने की आवश्यकता पडे" आदि अर्थों का उल्लेख है। मेरा इष्ट भी प्रकृत विषय ही है। दार्शनिक जगत् में वृत्ति का नाम लेते ही वे पुण्यश्लोक पूर्वोत्तर मीमांसा तथान्य अनेक विषयों पर वृत्तिकर्ता श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ९ वें आचार्य जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन उपस्थित हो जाते हैं। जिनके वृत्ति ग्रन्थों के समस्त परवर्ती भाष्यकार व टीकाकार ऋणि हैं। सभी भाष्यकार व टीकाकारों ने अपनी उक्ति में प्रामाण्य की मुद्रा लगाने के लिए "तदाह भगवान् बोधायनः" इस प्रकार बडे सम्मान से उनकी उक्तियों को उधृत किये हैं। आपने श्री रामानन्द सम्प्रदाय के ७ वें आचार्य श्रीवादरायण व्यासजी के ब्रह्मसूत्रों पर अद्भुत वृत्ति लिखी थी जो बोधायन वृत्ति के नाम से जगविख्यात हुई। वह ब्रह्मसूत्रों की प्रथम व्याख्या थी अपनी महनीयता के लिए अद्वितीय थी अपने प्रतिपाद्य विषय-विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन में 'अप्रतिद्वन्दमाहवे' की उक्ति को अक्षरश चरितार्थ करती थी। अतः असहिष्णु कालेहृदयवालों के काले करतूत ने नष्ट करने का प्रयत्न किया तथापि उसकी अतिविस्तृततम कीर्ति तथा यत्र तत्र ग्रन्थान्तरों में उधत महत्वपूर्ण वाक्यांश अद्यावधि ज्यों के त्यों हैं जो रामानन्द सम्प्रदाय के दर्शन भण्डार के अमूल्य रत्न हैं।

इस दुरुहप्राय वृत्ति को सरलतया बोधगम्य कराने की दृष्टि से विक्रम सम्वत् के ३२६–५२६ में वर्तमान जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी जो श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के १४ वें आचार्य हैं ने "प्रमिताक्षरावृत्ति" नाम से श्रीबोधायनवृत्तिसार लिखी। उसमें भी लोगों को अतिसारगर्भित होने के कारण इन्द्र के अर्थ विडौजा सा ही अनुभव होने लगा, अतः परवर्ति आचार्य जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी जिनका काल सम्वत् ८६६–१०६७ है श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के १८ वें आचार्य थे ने श्रीबोधा-

यनमतादर्श के नाम से प्रमिताक्षरावृत्तिसार लिखी जिसको सहस्त्रश्लोकी नाम से भी दार्शनिक जगत् जानता है। यह भी यत्र तत्र पूर्ववृत्तानुसार अपने गौरवमय गूढ़ार्थ गूढ रखने में पीछे नहीं रहा अतः लोगों को क्लेशानुभव करते देख जगद्गुरु श्री श्रियानन्दाचार्यजी स्थितिकाल संवत् १०२६–१२०६ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के १९ वें आचार्य ने "प्रमिताक्षरावृत्तिसार" लिखा। इस प्रकार श्रीबोधायनवृत्ति की उत्तरोत्तर एक के पीछे एक टीका विवृति होती गई उसकी महत्ता बढ़ती ही गई।

पर अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता है कि १२०६ के बाद की स्थिति का कोई अता पता नहीं। प्रायः विधर्मियों के जोर का काल वही है यह समय वह था जब पश्चिमोत्तर से आये अफगान एवं तुर्क दृढ़ हो चुके थे उत्तर भारत की हिन्दू–सत्ता प्रायः डांवा डोल थी। लगातार आक्रमणोंसे प्रजा परेशान थी। एक ओर देशी रजवाडों का पारस्परिक संघर्ष था तो दूसरी ओर विदेशी आक्रमण, हिन्दू राजागण असंगठित था विलासनत्त थे। एक अभिनब विजयी धर्म दृढता पूर्वक शासकों का आश्रय लेकर सिरउठारहा था और निशंक रूपेग अपने प्रचार में रत था। जिहाद के नामपर निरीह हिन्दुओं का नृशंस संहार प्रारंभ हो चुका था बलात् धर्म परिवर्तन का मार्ग खुल रहा था। विशृङ्खलित हिन्दु प्रजा का स्वमान पग पग पर भंग हो रहा था तथा राजनैतिक परिस्थितिहिन्दुओं के लिये तो सर्वथा विपरीतही थी। उस समय में वेद स्मृति इतिहास पुराण भाष्यादि आकर ग्रन्थों को ढूंड–ढूंड कर जला देना एक आम वात थी। इतिहास विदों से यह छूपा नहीं है कि छ छ महिने तक पुस्तक भण्डार जलते रहते थे। यह श्रीसम्प्रदाय श्रीरामनन्द-सम्प्रदाय की अमूल्य निधि भी प्रस्तुत प्रसङ्ग के चपेट में आया हो या हितेच्छु की जामा पहने सवर्णों की कालीकरतूत का शिकार हुआ पर आज तक सम्पूर्णतया वह वृत्ति अनुपलब्ध ही है।

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्पदाय) के प्रधान आचार्य 'जिनकी अवतरणतिथि विक्रमसम्वत् १३५६ साकेत गमनतिथि १५३२ है' जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी यतिसम्राट् ने अपने ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्य के अवतरणिकामें– "यस्याश्चसूत्ररूपत्वेनातिसूक्ष्माकारतामवधार्य साक्षाद्भगवदवतारस्वरूपस्य स्वपरमगुरोस्तस्याशयं तत एव समधिगम्य पारमैकान्त्यनिरतस्य स्वगुरोश्च श्रीशुकदेवमुनेराज्ञया बोधायनापरनामधेय श्रीपुरुषोत्तममुनिना सुखबोधाय विशदतमा वृत्तिरभ्यधायि। इयञ्चभगवद्बादरायणेन निश्चितानामेवार्थानामवबोधिकेति वेदान्ताध्वनि प्रवर्तमानानाम्महानवलम्बोऽस्या भवे भवेद्यदि कात्स्न्र्येनोपलब्धिरेतस्या भारतवसुन्धरायाम्। न

च सुहढं गवेशयद्भिरप्यस्माभिः सोपलभ्यते अतोऽस्मत्पूर्वाचार्यैर्येऽशाः क्वचिदस्याः सङ्गृहीतास्तान् सबहुमानं यथा स्थलमुद्धृत्येदं विधीयते सूत्रभाष्यमानन्दभाष्यं नाम" लिखा है अतः आचार्य श्री के कालमें वृत्ति पूर्णतः अनुपलब्ध थी ।

साथ ही स्वग्रन्थान्तमें आचार्यजी लिखते हैं–

"बोधायनवृत्त्यभावे तत्सारमनुसृत्य हि ।
आनन्दभाष्यमेतच्च रामानन्देन निर्मितम् ॥"

अतः यह विदित होता है कि श्रीबोधायन वृत्ति का सार तथा प्रमिताक्षरासार आदि पूर्वाचार्य प्रबन्धों के आधार पर आचार्य श्री का भाष्य अवलंवित है जो प्रायः पदे पदे झलकता है, इस विषय की विशेष चर्चा भाष्य विवरण में कीजा चूकी है अतः एहां अधिक चर्चा अस्थाने होगी ।

प्रकृत में कालक्रम व परिस्थिति के अनुसार भाष्य से अभिलषित पदार्थ को प्राप्त न कर सकने वालों को ध्यान में रखकर श्री रामानन्द सम्प्रदाय के ३९ वें आचार्य जगद्विजयी महामहोपाध्याय अनन्त श्री विभूषित १०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरीजी ने अति गभीराशय प्रसन्न मधुर अल्पाक्षरा श्रीरघुवरीयवृत्ति (ब्रह्मसूत्रीय वेदान्तवृत्ति) १९९४ वि०सं में रचना की थी यह भी अपने नामार्थ प्रकट करने में कोई कशर नहीं रखती वृत्तिकार महाभाग की ही प्रतिज्ञा वाणी है–"अति संक्षिप्ता वृत्तिर्विधीयते" तो विशदार्थगर्भस्वाभाविक है जैसे कि आप ही कह रहे है–"वेदान्तार्थप्रकाशिकाम्" उपसंहार श्लोक ४ में अतः समस्त वेदान्त तत्व को स्वल्पाक्षरों में समाविष्टकर स्फुट करना तथा उससे समस्त-तत्वावबोध होना कोई साधारण कार्य नहीं अतः तत्व जिज्ञासुओं को क्लेशानुभव होना स्वाभाविक है । उसमें भी यह वृत्ति संपूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय वाराणसी से ली जानेवाली श्रीरामानन्द वेदान्त के आचार्य परीक्षा में पाठ्यरूपेण नियत होने से छात्रों को परीक्षा सेतु सन्तरणजन्य क्लेश तो मर्कटस्य सुरापानम् वाली कथा चरितार्थ प्रायः कर रहा था। कई विज्ञसज्जन कनेक छात्रगण की इच्छा थी की वृत्ति को विवृत की जाय । सूचना स्थाने थी अति उत्तम थी पर किसी के ऊपर कलम उठाना कोई साधारण वात नहीं उसमें भी–

"तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुकाविपिने यथा । न गर्जति महासिंहो यावद्वेदान्त केसरी"

इस आभाणक से कोई अपरिचित नहीं तो ब्रह्ममीमांसा शास्त्र में कलम टेढी सीधी करनो कोई नानी मां का खेल नहीं । सावकाशता गहन चिन्तन तपः पूतान्तः

करणतादि सापेक्ष है ऐसे महान् कार्यों के लिये । इतरसाधनाभाव न होने पर भी सावकाशताभावजन्य हेतु से वृत्तिविवरण शीघ्र प्रकाश में नहीं आ सका । उसमें कारण था वाराणसी में प्रधान आचार्यपीठ स्थापन व शीघ्रनिर्माण जो कि अभीभी आचार्य श्री तत्कार्य में अहर्निशव्याप्त हैं तो भी किञ्चित्सावकाश हो कर मेरी विशेष प्रार्थना को लक्ष्य में रखकर स्वाचार्य कृति वृत्ति को विवृत करने की महानुग्रह आचार्य श्री ने किया । उसको यथाबुद्धि वैभव सम्पादन कर वृत्ति के साथ प्रकाशित किया जा रहा है इस प्रसंग में वाराणसी में प्रधान आचार्य पीठ आनन्द-भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ के संस्थापक निर्माता व संस्थापयाचार्य श्री रामानान्दसम्प्रदाय के ४० वें आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्य यौगीन्द्र जी के प्रसङ्ग में कुछ लिखना अप्रासङ्गिक न होता पर इस ग्रन्थ के साथ 'देशिक परिचर्या' शीर्षक से एक निवन्ध जुडा है उसी में ब्रह्मतत्वोपदेशक लेखक सभी पूर्वाचार्यों का व्यास—समास रूप से चर्चा आई है अतः यहां प्रपञ्च से विरत हो रहे है ।

वृत्ति विवरणने अपने पूर्वाचार्यो का रास्ता नहीं छोडा यत्र--तत्र व्यास समास से अछूता नहीं तो प्रसङ्गोपात्त गहनता को कैसे गूहित किया जा सकता ? मेरे स्वल्प विचार से यह अतिगहन ब्रह्मविद्या का गुण ही है । हां यह विवरण प्रायः समस्त पूर्वाचार्यो के दिव्य प्रवन्धों को उधृत कर यत्र तत्र स्वसिद्धान्तमत पुष्ट करने में थोडासा भी हिचकिचाता नहीं, जो इन विशिष्टाद्वैती समस्त पूर्वाचार्यो की परिपाटीसी रही है, अतः विवरणकार ने क्या अपराध किया कि इन्हे उत्पथ कहा जाय ? समयाभाव तथा निवन्ध काय वृद्धि भय से विशेष चर्चा नहीं कर लेखनी व्यापार से विरत हो रहे हैं क्योंकि हाथ अरशी को कंगन क्या ?, विवरण महाप्रबन्ध आप के अपने हाथों है यथेच्छ रसास्वाद करें परिणाम स्वरूप सायुज्य मुक्ति भाक् वनें ।

अनेक ब्रह्मतत्वजिज्ञासुओं का संस्कृत भाषामें पूर्ण प्रवेश न होने के कारण ऐसे शास्त्रों के रसास्वाद से वञ्चित रह जाते हैं उन लोगों के आग्रह को ध्यान में रखकर राष्ट्र भाषा में सारबोधिनी नामक हिन्दी विवरण को भी साथ में प्रकाशित किया जा रहा है । आशा तो यह है कि इससे साधारण पढे लिखे साधक भी अपना अभिष्ट तत्वज्ञान प्राप्त कर श्रीसाकेत लोकस्थ सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी की कैंकर्य प्राप्ति रूप मुक्ति के भागी वनकर अपने को कृतकृत्य करायेगे । पर इशमें विषय की दुरुहता ने यत्र तत्र विषय को कठीन सा बना दिया है । क्योंकि दार्शनिक परिपाटी व परिभाषा ही ऐसी है कि उस विषय को उसी के नियत शब्दों से न वताया जाय

तो उसका स्वारस्य टूटसा जाता है । रस का विच्छिन्न होना पाठक को अन्याभिमुख कर देता है, अतः यथा संभव दोनों पक्षों का रक्षण का प्रयत्न किया गया है, सफलता का मुहरतो विज्ञपाठक ही लगायेंगे, मैं तो क्या कहूँ ?

"निज कवित्त के ही लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका" ॥

मेरी अनभिज्ञता के कारण व दृष्टि दोष से अनेक छोटी मोटी भूले रह गई हैं । शोधनिका भी नहीं लगा पाये कार्याधिक्य के कारण । जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ मासिक पत्रिका का पूर्ण कार्य सम्पादन करना आनन्दभाष्य टीका तथान्य प्रस्थानों की टीका व स्वतन्त्र प्रकरण ग्रन्थों का टीका कार्य साथ साथ में चल रहा है अतः बौद्धिक मानसिक परिप्रेक्ष के साथ पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठ श्रीशेषमठ का कार्य व उससे सञ्चालित श्रीरघुवर संस्कृत महा विद्यालय तथा श्रीरामानन्दपीठ—श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद या उससे सञ्चालित श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय सञ्चाल का व्यवहारिक प्रपञ्च तो है ही । तथा दूसरा कारण यह भी वना कि इस वृत्तिविवरण को मैं जितना शीघ्र प्रकाशित करना चाहा उतना ही विलम्ब अनेक कारणों से होता गया, विलम्बता जन्यखिन्नता मेरी दुर्वलता का ही प्रतिक है । अतः इस न्यूनता के प्रति ध्यान देकर असावधानी से रही भूलों को सुधार कर पढें तथा कृपा पूर्वक सूचेत करें ताकि पुनरावृत्ति में पूर्णध्यान दिया जा सके ।

वृत्ति—विवरण के प्रूफ शोधनादि कार्य में मेरे शिष्य सद्ग्रहस्थ व्याकरण श्री वल्लभ वेदान्ताचार्य श्रीशरच्चन्द्र शास्त्री का पूर्ण सहयोग रहा एतदर्थ अनेक धन्यवाद ।

सुधिजनविधेय श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का एक सेवक
स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य
पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठ. श्रीशेषमठ. गुरुपूर्णिमा २०३९

॥ सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

वेदान्तदर्शन की श्रीरघुवरीयवृत्ति

'अब मुझे मरना है' यह जानकर प्राणीको जो दुःखहोता है उसका वर्णन उस प्राणीसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं कर सकता है । राजा हो या रङ्क बलवान् हो या निर्बल मृत्युकर्त्ता यमराज से डर कर काँपने से या प्रार्थना करने से भी प्राणी की मृत्यु कारता ही है इसीलिये भगवान् ने गीता में कहा है कि 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' (जन्म ग्रहण करने वाले की मृत्यु निश्चित है) अन्योने भी कहा है

कि—'मृत्योर्विभेषि किं मूढ ! भीतं मुञ्चति नो यमः ।' (अरेमूढ़ मृत्यु से क्यों डरता है । डरे हुऐ को मृत्यु छोड़ नहीं देता है ।) अब शंका यह होती है कि मृत्यु किसको नहीं पकड सकता है । वहीं पर कहा भी है—अजन्मानं न गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि । (अजन्मा—जिसका जन्म न हो मृत्यु उसे नहीं पकड़ सकता है इसलिए अजन्मा होने के लिए अर्थात् मृत्यु को जीत लेने का प्रयत्न करना चाहिए ।

'अपाम सोमममृता अभूम' (यज्ञ करके हम सोमपान करेंगे और अमृत—मृत्युरहित बनेगे। परन्तु 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' (यज्ञ के पुण्य के क्षीण होने पर फिर मृत्युलोक में प्रवेश करना पड़ता है और मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है ।) श्रुति भी कहती है कि—

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन" (कर्मसम्पादित स्वर्गादिलोकों की परीक्षा करके कि जैसे इस लोक के कर्मसम्पादित पदार्थ अनित्य हैं वैसे ही यज्ञादि कर्मों द्वारा सम्पादित लोक भी अनित्य है ।)

'भोक्ता योग्यं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ।' (भोक्ता (जींव) योग्य (देहादि प्रकृति) तथा सर्वनियामक भगवान् श्रीराम (ब्रह्म) को जानकर (उपासना करके) प्राणी भगवान्से प्रसन्नकिया हुआ होकर अमर पद को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

"तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय" (उस ब्रह्म को जान करके ही अर्थात् ब्रह्म की उपासना करके ही मनुष्य मृत्यु से जीतता है अर्थात् मृत्युका उल्लंघन करके मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष प्राप्ति का दूसरा उपाय नहीं है ।) जिनके लिए कहा जाता है कि-

"अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः । अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् वादरायणः ।।"

इसीलिए अर्थात् अनादिकाल से कर्मबन्धन से बद्ध जीवो का उद्धारकर उनकी मोक्ष प्राप्ति के लिए श्रीसम्प्रदाय के परमाचार्य भगवान् श्रीवादरायण व्यास जी ने बेदान्त दर्शन (ब्रह्ममीमांसा) शास्त्र की रचना की । जिस मैं चार अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में चार चार पाद हैं और प्रत्येक पाद में कई अधिकरण तथा कई सूत्र हैं । प्रत्येक अध्यायों के तथा उनके पादों के अत्यन्त सूक्ष्म अर्थ मैने श्रीब्रह्मसूत्रार्थ संग्रह में कर दिये हैं । श्रीआनन्दभाष्य का हिन्दी वैष्णवालङ्कारभाष्य भी अपूर्ण छपा दिया है । वेदान्त दर्शन के समस्त अधिकरणों के सूक्ष्मार्थ अधिकरण रत्नमाला में कर दिये हैं । वे सब मुद्रित हो चुके हैं ।

परमाचार्य श्रीवेदव्यासजी के वेदान्त दर्शन के विषय में कहा जाता है कि—

तावद् गर्जन्तिशास्त्राणि जम्बुका बिपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्त केशरी ॥

वेदान्त दर्शन के सूत्रों में अल्पाक्षर द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन किया गया है, वह सर्व साधारण के लिए दुर्लभ है अतः सुगम बनाकर सर्वजन संवेद्य करने के लिए श्रीसम्प्रदाय के उदार आचार्यों ने प्रसंसनीय प्रयत्न किए हैं । जिनमें बोधायन वृत्तिकार महर्षि श्री पुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायनाचार्यजी कृत गुरुभाष्यनामक अति महती श्री बोधायनवृत्ति अपरबोधायनाचार्य जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी वेदान्त विद्यानिधिकृत श्रीप्रमिताक्षरावृत्ति तथा श्री रामावतार आनन्दभाष्यकारभगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीसम्प्रदाचार्यकृत श्रीआनन्दभाष्य आदि प्रधान हैं ।

उक्त श्रीब्रह्मसूत्र के व्याख्यान अति विस्तृत हैं । अतः ब्रह्मसूत्रार्थ के ज्ञान में प्रवेश करने के लिए श्रीसम्प्रदाय के महाविद्वान् सर्वतंत्र स्वतन्त्र महा-महोपाध्याय शतावधानी जगद्गुरुश्रीरघुवराचार्यजी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज श्रीसम्प्रदाय के उन्तालीसवें आचार्य ने वेदान्त सूत्रों पर श्रीरघुवरीय वेदान्तवृत्ति नामक अत्युत्कृष्ट वृत्ति की रचना की । उन श्रीमहामहोपाध्यायजी के सिंहासन पर आसीन श्री सम्प्रदाय के चालिसवें आचार्य जगद्गुरु श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी श्रीरामा-नन्दाचार्यजी योगीराज ने उक्त श्री रघुवरीयवृत्ति को अत्युत्तम श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरण नामक संस्कृत व्याख्या से विभूषित किया है । जिसे उक्त योगीराज के अत्यन्त योग्य और महाविद्वान् शिष्यरत्न स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी ने सारबोधिनी नामक अति सरल हिन्दी व्याख्या से अलङ्कृत करके मुद्रित कर दिए हैं ।

श्रीरघुवरीयवृत्ति वाराणसेय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की श्रीरामानन्द वेदान्त की परीक्षा का पाठ्य ग्रन्थ है । इस व्याख्या से श्रीरामानद वेदान्त के परीक्षार्थियों को तथा श्रीरामानन्द वेदान्त के जिज्ञासुओं को तथा श्रीरामानन्द वेदान्त के प्रचारकों को अत्यन्त लाभ होगा । उक्त तीनों महानुभावों के इस सुन्दर कार्य से श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सभी अनुयायी बहुत प्रसन्न हैं । भगवान् श्रीरामजी इस ग्रन्थ के प्रचार को विस्तृत करके श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के यश को दिगन्त व्यापी बनावें यहीं प्रार्थना है । महामहोपाध्याय श्रीयोगीराजजी तथा स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी को सहस्रशः धन्यवाद है । इस विशाल ग्रन्थ के प्रकाशक श्री विश्रामद्वारिकास्थ श्रीरामानन्दपीठ के धर्मप्रचार विभाग को भी सहस्रश धन्य-

वाः है जिनके सत्प्रबन्धकत्व में श्रीरामानन्द दर्शन साहित्य के अनेक अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हुये ।

श्रीरामानन्द प्रम्प्रदाय का लघुसेवक
पण्डितसम्राट् स्वामी वैष्णवाचार्य
त्रणदेरी श्रीराममन्दिर–शारंगपुर दर्वाजाबाहर
अहमदाबाद–२

जगद्गुरुश्रीअनन्तानन्दाचार्यप्रदर्शितम्

श्रीबौधायनदर्शनम्

रामे दुर्गुणवृन्दखण्डनपरा नैर्गुण्यवादाः श्रुतौ
गौणार्था न गुणोक्तयः शुभगुणाम्भोधौपरब्रह्मणि ।
अद्वैतश्रुतयो विशिष्टविषया द्वैतश्रुतिस्तात्विकी
रामानन्दमतं हि तद्विजयते बौधायनं दर्शनम् ॥१॥

स्थूलेनाथ चिताऽचिता किल युतं कार्यं परं ब्रह्म यत्
सूक्ष्मेणाथ चिताऽचिता खलु युतं ब्रह्मैव तत्कारणम् ।
ऐक्यंचाथमतं द्वयोः शुभविशिष्टाद्वैतके यत्र वै ।
रामानन्दमतं हि तद्विजयते बौधायनं दर्शनम् ॥२॥

चिद्वाच्यस्त्वणुचेतनो बुधवरै र्ज्ञानस्वरूपोमतः
श्रीरामस्य परेश्वरस्य सुतनुर्देही स्वदेहस्य यः
न प्राणस्त्वथ नेन्द्रियं नच तनुर्जीवोऽमृतोयत्र वै
रामानन्दमतं हि तद्विजयते बौधायनं दर्शनम् ॥३॥

ज्ञेयाऽचित्प्रकृतिर्जडा गतमतिः सत्वादयो यद्गुणा
अव्यक्तादिपदेरिता विकृतिकृन्माया जगन्मोहिनी ।
रामाधिष्ठितरूपिणी तु जगतो हेतुः सती यत्र वै
रामानन्दमतं हि तद्विजयते बौधायनं दर्शनम् ॥४॥

श्रीरामश्चिदचित्तनुर्हि जगतो जन्मादिहेतुर्विभुः
सर्वज्ञः सकलेश्वरः श्रुतिमतो यो भक्तितो मुक्तिदः ।
तत्वं यत्र परो यतोऽधिकतमं नो येन तुल्यं क्वचित्
रामानन्दमतं हि तद्विजते बौधायनं दर्शनम् ॥५॥

श्रीरामानन्दशिष्य श्री अनन्दानन्ददर्शितम् ।
बोधाद्धिमुक्तिदं भूयाद् श्रीबौधायनदर्शनम् ॥६॥

श्रीरघुवरमङ्गलम्

वशिष्ठगोत्रोत्पन्नाय त्रिपवरयुताय च ।
शिखादक्षिणपादाय रघुवराय मङ्गलम् ॥१॥

बोधायनीयधर्मस्य सूत्रतत्वाववोधिने ।
मीमांसातत्ववित्तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥२॥

कान्यकुब्जावतंसाय रामनिवास सूनवे ।
जानकीनन्दनायाथ रघुवराय मङ्गलम् ॥३॥

माध्यन्दिनीयशाखास्थ शुक्लवेदविदे सदा ।
कात्यायनीयश्रौतस्य रघुवराय मङ्गलम् ॥४॥

हनुमदाचार्यसच्छिष्य वेदवेदान्त वेदिने ।
वाक्यतत्वविदे तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥५॥

येनाचार्यकृतानन्दभाष्यं संशोधितं मुदा ।
सम्प्रदायाब्धिचन्द्रस्य रघुवराय मङ्गलम् ॥६॥

येन वृत्तिकृतारम्या भाष्यगूढार्थबोधिका ।
भाष्यगुह्यार्थवित्तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥७॥

यस्य मन्त्रार्थमीमांसा राजते तत्त्वबोधिका ।
मन्त्रतत्त्वबिदे तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥८॥

गीतार्थचन्द्रिका यस्य राजते चन्द्रवद्भुवि ।
गीतहृदयवित्तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥९॥

सर्वशास्त्रार्थ संगोष्ठयां प्रतिपक्षि पलायिता ।
जगद्विजयिने तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥१०॥

देवदिङ्नवब्रह्माब्दे विजयादशमी तिथौ ।
आविर्भूतो हि यस्तस्मै रघुवराय मङ्गलम् ॥११॥

चत्वारिंशत्तमाचार्यं रामप्रपन्नयोगिराट् ।
शिष्यतां यातो यस्य श्रीरघुवराय मङ्गलम् ॥१२॥
वैष्णव-जानकी-रामा विद्याशिष्या हि विश्रुताः ।
अनन्तशिष्यशिष्याय रघुवराय मङ्गलम् ॥१३॥
दुःखमुक्ताः समेजाताः शिष्यतांप्राप्ययस्य वै ।
रामानन्दावताराय रघुवराय मङ्गलम् ॥१४॥
अश्वखशून्ययुग्मेऽब्दे वसन्तपञ्चमीतिथौ ।
नित्यपार्षदतांयातो रघुवराय मङ्गलम् ॥१५॥
यस्य ज्ञानप्रकाशोऽभूत्सम्प्रदाय विवर्धकः ।
रामेश्वरप्रशिष्याय रघुवराय मङ्गलम् ॥१६॥
रघुवरप्रशिष्येण रामेश्वरार्यनिर्मितम् ।
मङ्गलंभवता देतत्पाठाज्ज्ञानविवर्धकम् ॥

परैर्वेदान्तार्थं कलुषितपथं प्रापयति यो-
विशिष्टाद्वैताख्यं प्रथित मतमेतत्प्रकटयन् ।
परप्रत्यग्भेदं श्रुतिशिरसि सिद्धं विशदयन्
यती रामानन्दः स हि सुगुणसिन्धुर्विजयते ॥१॥
(जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्याः)

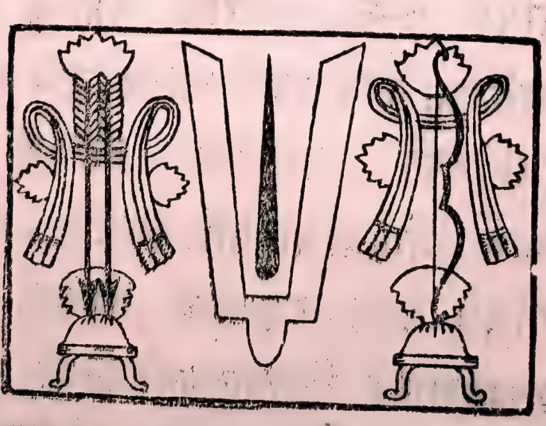

जगद्विजयि श्री रामानन्दाचार्यरघुवराचार्य निर्मितं

श्री रामानन्दमङ्गलदशकम्

मोक्षमार्गश्च येनात्रानन्दभाष्ये हि दर्शितः ।
तस्मै च भाष्यकाराय रामानन्दाय मङ्गलम् ॥१॥
आ प्राणं येन चावृत्ती रामभक्तेः प्रदर्शिता ।
भक्तोपकारिणे तस्मै रामानन्दाय मङ्गलम् ॥२॥
अविद्यायां मता येन सप्तधाऽनुपपत्तयः ।
तस्मै भगवते श्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥३॥
भाष्ये च ब्रह्मसूत्राणां येनाध्यासोऽतिखण्डितः ।
तस्मै भगवते श्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥४॥
ब्रह्मणश्च प्रकारांशाज्जातं जगद्धि यन्मते ।
तस्मै भगवते श्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥५॥
जगतश्च विवर्त्तत्वं भाष्येचानन्दसंज्ञके ।
निरस्तं येन तस्मै श्रीरामानन्दाय मङ्गलम् ॥६॥
ब्रह्मणः प्रतिबिम्बत्वं येन जीवस्य नो मतम् ।
तस्मै भगवते श्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥७॥
सर्वोच्चफलदात्रे च सर्वोच्चधामदायिने ।
मन्त्रराजप्रदात्रे श्रीरामानन्दाय मङ्गलम् ॥८॥
श्रीसुशीलात्मजाय श्रीपुण्यसद्मसुताय च ।
वशिष्ठगोत्रिणे श्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥९॥
प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय धीमते ।
राघवानन्दशिष्याय रामानन्दाय मङ्गलम् ॥१०॥
श्रीमद्रघुवराचार्य रामानन्दैश्च निर्मितम् ।
दशकं भवतादेतत् पाठान्मङ्गलकारकम् ॥११॥

अधिकरणसूची

		पृष्ठ
जिज्ञासाधिकारणम्	१।१।१	७
जन्माद्यधिकरणम्	१।१।२	२४
शास्त्रयोनित्वाधिकरणम्	१।१।३	३५
समन्वयाधिकरणम्	१।१।४	४५
ईक्षत्यधिकरणम्	१।१।५	७१
आनन्दमयाधिकरणम्	१।१।१३	११४
अन्तरधिकरणम्	१।१।२१	१४८
आकाशाधिकरणम्	१।१।२३	१५९
प्राणाधिकरणम्	१।१।२४	१६६
ज्योतिरधिकरणम्	१।१।२५	१७२
प्राणानुगमाधिकरणम्	१।१।२९	१८६
सर्वत्रप्रसिद्ध्यधिकरणम्	१।२।१	२०७
अत्ताधिकरणम्	१।२।९	२४३
गुहाप्रविष्टाधिकरणम्	१।२।११	२४९
अन्तराधिकरणम्	१।२।१३	२५४
अन्तर्याम्यधिकरणम्	१।२।१९	२७०
अदृश्यत्वगुणकाधिकरणम्	१।२।२२	२८४
वैश्वानराधिकरणम्	१।२।२५	२९६
द्युभ्वाद्यधिकरणम्	१।३।१	३२२
भूमाधिकरणम्	१।३।८	३४०
अक्षराधिकरणम्	१।३।१०	३४७
ईक्षतिकर्माधिकरणम्	१।३।१३	३५६
दहराधिकरणम्	१।३।१४	३६०
प्रमिताधिकरणम्	१।३!२४	३९१
देवताधिकरणम्	१।३।२६	३९७
मध्वधिकरणम्	१।३।३१	४१८
अपशूद्राधिकरणम्	१।३।३४	४२४

		पृष्ठ
कम्पनाधिकरणम्	१।३।३९	४३७
ज्योतिर्दर्शनाधिकरणम्	१।३।४०	४४१
अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाधिकरणम्	१।३।४१	४४३
आनुमानिकाधिकरणम्	१।४।१	४५२
चमसाधिकरणम्	१।४।८	४६६
सङ्ख्योपसङ्ग्रहाधिकरणम्	१।४।११	४७४
कारणत्वाधिकरणम्	१।४।१४	४८०
जगद्वाचित्वाधिकरणम्	१।४।१६	४८५
वाक्यान्वयाधिकरणम्	१।४।१९	४९१
प्रकृत्यधिकरणम्	१।४।२३	४९७
सर्वव्याख्यानाधिकरणम्	१।४।२९	५०७
स्मृत्यधिकरणम्	२।१।१	५०९
योगप्रत्युक्त्यधिकरणम्	२।१।३	५१३
विलक्षणत्वाधिकरणम्	२।१।४	५१५
शिष्टापरिग्रहाधिकरणम्	२।१।१३	५३२
भोक्त्रापत्यधिकरणम्	२।१।१४	५३४
आरंभाधिकरणम्	२।१।१५	५३८
इतरव्यपदेशाधिकरणम्	२।१।२२	५५२
उपसंहारादर्शनाधिकरणम्	२।१।२५	५५८
कृत्स्नप्रसक्त्यधिकरणम्	२।१।२७	५६३
प्रयोजनवत्वाधिकरणम्	२।१।३३	५७५
रचनानुपपत्यधिकरणम्	२।२।१	५८७
महद्दीर्घाधिकरणम्	२।२।११	६०७
समुदायाधिकरणम्	२।२।१८	६२३
उपलब्ध्यधिकरणम्	२।२।२८	६४१

		पृष्ठ
सर्वथानुपपत्त्यधिकरणम्	२।२।३२	६४९
नैकस्मिन्नसंभवा		
धिकरणम्	२।२।३३	६५१
पत्यधिकरणम्	२।२।३७	६५९
उत्पत्त्यसंभवाधिकरणम्	२।२।४२	६६६
वियदधिकरणम्	२।३।१	६७८
तेजोऽधिकरणम्	२।३।११	६९४
विपर्ययाधिकरणम्	२।३।१६	७०३
अन्तराविज्ञाना		
धिकरणम्	२।३।१७	७०५
आत्माधिकरणम्	२।३।१९	७१०
ज्ञाधिकरणम्	२।३।२०	७१५
कर्त्रधिकरणम्	२।३।३४	७३८
परायत्ताधिकरणम्	२।३।४१	७४७
अंशाधिकरणम्	२।३।४३	७५१
प्राणोत्पत्त्यधिकरणम्	२।४।१	७६७
सतगत्यधिकरणम्	२।४।५	७७४
प्राणाणुत्वाधिकरणम्	२।४।७	७७७
श्रेष्ठत्वाधिकरणम्	२।४।८	७७९
वायुक्रियाधिकरणम्	२।४।९	७८१
अणुत्वाधिकरणम्	२।४।१३	७८७
ज्योतिरधिष्ठानाधिकरणम्	२।४।१४	७८९
इन्द्रियाधिकरणम्	२।४।१७	७९३
संज्ञामूर्ति क्लृप्त्य		
धिकरणम्	२।४।१९	७९६
तदन्तरप्रतिपत्त्यधिकरणम्	३।१।१	८०३
कृतात्ययाधिकरणम्	३।१।८	८१४
अनिष्टादिकार्या-		
धिकरणम्	३।१।१२	८२१
साम्भाव्यापत्यधिकरणम्	३।१।२२	८३९
नातिचिराधिकरणम्	३।१।२३	८४२
अन्याधिष्ठिताधिकरणम्	३।१।२४	८४४
सन्ध्याधिकरणम्	३।२।१	८५०
तदभावाधिकरणम्	३।२।७	८६१
कर्मानुस्मृतिशब्दविध्य-		
धिकरणम्	३।२।९	८६५
मुग्धाधिकरणम्	३।२।१०	८६७
उभयलिङ्गाधिकरणम्	३।२।११	८६९
अहिकुण्डलाधिकरणम्	३।२।२६	८८९
पराधिकरणम्	३।२।३०	८९३
फलाधिकरणम्	३।२।३७	९००
सर्ववेदान्तप्रत्यया		
धिकरणम्	३।३।१	९०७
अन्यथात्वाधिकरणम्	३।३।६	९१३
सर्वाभेदाधिकरणम्	३।३।१०	९१७
आनन्दाद्यधिकरणम्	३।३।११	९१९
कार्याख्यानाधिकरणम्	३।३।१८	९२७
समानाधिकरणम्	३।३।१९	९२९
सम्बन्धाधिकरणम्	३।३।२०	९३०
सम्भृत्यधिकरणम्	३।३।२३	९३३
पुरुषविद्याधिकरणम्	३।३।२४	९३४
वेधाद्यधिकरणम्	३।३।२५	९३७
हान्यधिकरणम्	३।३।२६	९३८
साम्परायाधिकरणम्	३।३।२७	९४३
अनियमाधिकरणम्	३।३।३२	९४८
अक्षरध्यधिकरणम्	३।३।३३	९५१
अन्तरत्वाधिकरणम्	३।३।३५	९५३
कामाद्यधिकरणम्	३।३।३८	९५७
तन्निर्धारणनियमा-		
धिकरणम्	३।३।४१	९६१

		पृष्ठ
प्रदानाधिकरणम्	३।३।४२	९६३
लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणम्	३।३।४३	९६५
आत्मनः शरीरभावाधिकरणम्	३।३।५१	९७२
अङ्गावबद्धाधिकरणम्	३।३।५३	९७५
भूमज्यायस्त्वाधिकरणम्	३।३।५५	९७६
शब्दादि भेदाधिकरणम्	३।३।५६	९७९
विकल्पाधिकरणम्	३।३।५७	९८१
यथाश्रयाभावाधिकरणम्	३।३।५९	९८३
पुरुषार्थाधिकरणम्	३।४।१	९८८
स्तुतिमात्राधिकरणम्	३।४।२१	१०१३
पारिप्लवार्थाधिकरणम्	३।४।२३	१०१५
अग्नीन्धनाधिकरणम्	३।४।२५	१०१७
सर्वापेक्षाधिकरणम्	३।४।२६	१०१९
शमदमाद्यधिकरणम्	३।४।२७	१०२०
सर्वान्नानुमत्यधिकरणम्	३।४।२८	१०२२
विहितत्वाधिकरणम्	३।४।३२	१०२६
विधुराधिकरणम्	३।४।३६	१०३०
तद्भूताधिकरणम्	३।४।४०	१०३४
स्वाम्यधिकरणम्	३।४।४४	१०४१
सहकार्यन्तरविध्यधिकरणम्	३।४।४६	१०४३
अनाविष्काराधिकरणम्	३।४।४९	१०४७
ऐहिकाधिकरणम्	३।४।५०	१०४८
मुक्तिफलाधिकरणम्	३।४।५१	१०५०
आवृत्त्यधिकरणम्	४।१।१	१०५३
आत्मत्वोपासनाधिकरणम्	४।१।३	१०५८
प्रतिकाधिकरणम्	४।१।४	१०६१
आदित्यादिमत्यधिकरणम्	४।१।६	१०६४
आसीनाधिकरणम्	४।१।७	१०६५
आप्रयाणाधिकरणम्	४।१।१२	१०६९

		पृष्ठ
तदधिगमाधिकरणम्	४।१।१३	१०७१
इतराधिकरणम्	४।१।१४	१०७५
अनारब्धकार्याधिकरणम्	४।१।१५	१०७८
अग्निहोत्राद्यधिकरणम्	४।१।१६	१०८०
इतरक्षपणाधिकरणम्	४।१।१९	१०८४
वागधिकरणम्	४।२।१	१०८७
मनोधिकरणम्	४।२।३	१०९०
अध्यक्षाधिकरणम्	४।२।४	१०९२
भूताधिकरणम्	४।२।५	१०९४
आसृत्युपक्रमाधिकरणम्	४।२।७	१०९७
परसम्पत्त्यधिकरणम्	४।२।१४	११०७
अविभागाधिकरणम्	४।२।१५	११०८
तदोकोऽधिकरणम्	४।२।१६	१११०
रश्म्यनुसाराधिकरणम्	४।२।१७	१११४
दक्षिणायनाधिकरणम्	४।२।१९	१११७
अर्चिराधिकरणम्	४।३।१	११२०
वाय्वधिकरणम्	४।३।२	११२३
वरुणाधिकरणम्	४।३।३	११२६
अतिवाहिकाधिकरणम्	४।३।४	११२८
कार्याधिकरणम्	४।३।६	११३१
संपद्याविर्भावाधिकरणम्	४।४।१	११४४
अविभागेनदृष्टत्वाधिकरणम्	४।४।४	११४९
ब्रह्माधिकरणम्	४।४।५	११५१
सङ्कल्पाधिकरणम्	४।४।८	११५४
अभावाधिकरणम्	४।४।१०	११५७
जगद्व्यापारवर्जाधिकरणम्	४।४।१७	११६६
श्रीसीतास्तोत्रम्		११७९
श्रीजानकीपञ्चकम्		११८३
श्रीहनुमत्पञ्चकम्		११८४

श्री साकेतविहारिणे नमः

श्री हनुमते नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः

जगद्विजयिमहामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य-कृता

श्रीरघुवरीयवृत्तिः

(श्रीब्रह्मसूत्रीयवेदान्तवृत्तिः)

समस्तचिदचिद्वस्तुशरीराय परात्मने ।
नमः श्रीराघवेन्द्राय जगज्जन्मादिहेतवे ॥१॥

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य-रामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रकृतं

श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरणम्

सीतां तथा च सीतेशं व्यासबोधायनौ मुनी ।
नत्वा नमाम्यहं श्रीमद्रामानन्दंजगद्गुरुम् ॥१॥
प्रणम्यानुभवानन्दद्वाराचार्यं तथा गुरुम् ।
वृत्तेरघुवरीयायाष्टीकामेतां करोम्यहम् ॥२॥

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रशिष्य
स्वामिरामेश्वरानन्दाचार्यकृता

सारबोधिनी

नत्वा परात्परं ब्रह्म श्रीसाकेतविहारिणम् ।
सूत्रवृत्तिकृतौ वन्दे व्यासबोधायनावहम् ॥ १ ॥

टिप्पणी—अथ विघ्नविनाशाय अथवा निर्विघ्नग्रन्थसमाप्तये मङ्गचरितवान् ग्रन्थकारः परन्तु तन्न समीचीनमिवाभाति, यतो येन सह अन्वयव्यतिरेकौ भवतस्तत्रैव कार्यकारणभावो भवति तु सर्वत्र । यथा दण्डसत्त्वे घटो जायते दण्डाभावे घटो न जायते न्वयव्यतिरेकयोः सद्भावाद् भवति दण्डघटयोः कार्यकारणभावः सर्वत्रान्वयव्यतिरेकयोरेव कारणताग्राहकत्वात् । प्रकृते तु मङ्गलसद्भावेऽपि

नमस्तस्मै यतीशाय रामानन्दाय धीमते ।
भाष्यत्विषांपतिर्यष्य मोहध्वान्तनिबर्तकः ॥२॥

श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरणम्—शारीरकमीमांसायाआनन्दभाष्यंपरमदुरूहत्वेन तत्राल्पधियां कथमिव प्रवेशः स्यादिति विचार्य भाष्याम्वुधौ स्वल्पमतीनां प्रवेशाय तदर्थप्रकाशिकां वृत्तिं कृतवानाचार्यः। सा च वृत्तिरतिसंक्षिप्तेति तदर्थप्रकाशनप्रवणं यथाशक्ति तनोमि तत्र विवरणम्। प्रारीप्सितग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तये स्वेष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं करोति वृत्तिकारः "समस्तेत्यादि" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । यस्मात् पुरुषविशेषात्सर्वज्ञात् सर्वशक्तिसमन्वितात् सर्वेश्वर श्रीरामादिमानि परिदृश्यमानानि गगनादीनिपञ्चभूतानिभौतिकानि च जायन्ते समुत्पद्यन्ते समुत्पन्नानि च तानि भूतानियस्मिन् जीवन्ति अर्थादुत्पद्यावस्थितानि भवन्ति यथास्थानम् तथा प्रतिसर्गसमये तस्मिन्नेव परमात्मनि लीयमानानि भवन्ति

आनन्दभाष्यकृद्रामानन्दं नत्वा जगद्गुरुम् ।
वन्दे चानुभवानन्दं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥ २ ॥
श्रीमद्रघुवराचार्यं नत्वा च परमं गुरुम् ।
रामप्रपन्नयोगीन्द्र रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥ ३ ॥
मुक्तिदञ्च मुमुक्षूणां सज्जिज्ञासुप्रबोधदाम् ।
वृत्ते रघुवरीयाया कुर्वेऽहं सारबोधिनीम् ॥ ४॥

३. सारबोधिनी—समस्त अर्थात् सकल जो चिदचित् जड़चेतन कार्यजात है शरीर जिसका इस विसेषण से वेदान्त का अभिमतजो परमेश्वर के साथ शेष शेषी भाव सम्बन्ध है वह प्रकाशित होता है । अर्थात् भगवान्

स्थलविशेषे समाप्तिर्न दृश्यते । क्वचित्तु मङ्गलाभावेऽपि समाप्तिर्निर्विघ्नपूर्वकोपलभ्यते तत्कथं प्रकृते कार्यकारणभावः। फलाभावे निष्फले मङ्गले कार्ये कथं प्रवृत्तिः "न कुर्यान्निष्फलं कर्म नात्मानमसुखोदयमिति", स्मृते जलताडनवत् निष्फलकर्मणः करणस्य निषेधादिति । अत्रोच्यते अन्वयव्यभिचारस्य व्यतिरेकव्यभिचारसंशयस्य प्रात्यक्षिककार्यप्रतिवन्धक-

दुःखसागरसंमज्जज्जीवोद्धरणतत्परम् ।
यतिवर्यं ब्रह्मनिष्ठं स्वाचार्यमाश्रयेऽनिशम् ॥३॥

तद्ब्रह्मेति शेषः" इत्याद्यनेकश्रुतिप्रतिपादितसकलजडचेतनात्मकजगतः कारणाय। तथा 'यस्य पृथिवी शरीरम्" इत्याद्यन्तर्यामिप्रकरणस्थश्रुतिबोधितजडचेतनात्मकपदार्थवपुषे परमात्मने परश्चासौ आत्मा चेति परात्मा।आत्मनि परत्वं चानन्तकल्याणगुणाधिकरणात्मकतादिलक्षणमेव। एतादृशाय परमात्मने। तथा "श्रीराघवेन्द्राय" रघुकुलोत्पन्नेषु राजसु अतिशयेन श्रेष्ठाय श्रीरामचन्द्राय नमोऽस्तु। यद्यपि सकलजगत्कारणस्य जरामरणादिधर्मरहितस्य परमपुरुषस्य रघुकुले जन्मेति विप्रतिषिद्धमिवाभाति तथापि भक्तानुग्रहाय लीलाविग्रहधारणं कुर्वन्नातिक्रामति लोकमर्यादामिति न किञ्चिदपि विप्रतिषिध्यते "वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे" "रघोकुलेऽखिलं राति राजते यो महिस्थितः" इतिश्रुत्युक्ते इति ॥१॥

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः"यस्य परमश्रद्धाशीलस्य पुरुषस्य देवविषयिणी भक्ति-

---

का सकल पदार्थ के साथ आत्यन्तिक भेद है अथवा सर्वथा अभेद है इन दोनोंपक्षों में जो विप्रतिपत्तियां होती है उनका नियत श्रुति द्वारा अंशांशो भाव का बोध कराया जाता है। एतादृश परमात्मा का अन्वय नमस्कार क्रिया के साथ में है। आत्मा में परत्व क्या है ? जो अनन्त कल्याणगुणाधिकरणतारूप है। यह जो परत्व परमात्मा में है, वह श्रुतिसिद्ध तथा अबाधित भी है। एवं स्थावरजंगमात्मक जो जगत् है तादृश जगत् के परमात्मा हेतु कारण हैं। यहाँ हेतुपद कर्तारूप कारण का द्योतक है। अर्थात् परमात्मा जगद्रूप कार्य को बनाने वाले कर्ता हैं जैसे घटादि कार्य के प्रति कुलालादि चेतन कर्ता

त्वेऽपि अनुमितौ पक्षतासंपादनविधया संशयस्य जनकत्वेन प्रत्यक्षतो मङ्गलविघ्नध्वंसयो कार्यकारणभावस्य साधयितुमशक्यत्वेऽपि अनुमानद्वारा मङ्गले फलवत्वसाधने क्षत्यभावात् मङ्गलं सफलमविगीतशिष्टाचारविषयत्वादित्यनुमानेन सफलत्वसिद्धेः, यथा दर्शनामकयागे यथोक्त-

श्रीमदानन्दभाष्यस्याशयं तदनुसारतः ।
विचार्य ब्रह्मसूत्रेषु वृत्तिरेषा विधीयते ॥४॥

विद्यते । अथवा यादृशी भक्तिर्देवे तादृशी यदि भक्तिर्गुरुविषयिणी भवेत्तदैव तत्कथितपदार्थप्रकाशो लोके जायते नातोऽन्येन प्रतिपादितपदार्थप्रकाशनं भवतीति नियमं हृदि निधाय गुरुनमस्कारं कुर्वन्नाह "नमस्तस्मै यतीशाय" इत्यादि यतीनां यमिनामीशो यतीशस्तस्मैयतीशाय वैराग्यादिविविधगुणविशिष्टाय ज. गु. श्रीरामानन्दाचार्याय एतन्नामकजगत्प्रसिद्धश्रीवैष्णवाचार्याय । प्रसिद्धार्थकोऽपि "तत्" शब्दः क्वचित्क्वचिदुपलभ्यते यथा "द्वयंगतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिनः । कला च सा कान्तिमतीकलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी" इति कुमारसंभवीयश्लोके "कला च सा" इत्यत्र जगति प्रसिद्धा चन्द्रमसः कला" इत्यर्थो वर्णितः, एवमिहापि नम-

होता है । कर्ता वही कहलाता है उत्पाद्य कार्य का जो समवायि कारण उसको प्रत्यक्ष रूप से जान सके तथा कार्य विषयकचिकीर्षाकृतिमान् हो । तो प्रकृति में जगत्कर्ता परमात्मा है । यदि कदाचित् हेतु पद से समवायी कारण मानें तो परमेश्वर से जायमान पृथिव्यादिक जड़ में भी चेतनता हो जायगी । क्योंकि कारण में रहनेवाला गुण कार्य में सजातीयगुणान्तर का आरम्भक होता है । ऐसा होने से जगत् में जो जड़चेतन विभाग है जो कि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं वह बाधित हो जाएगा, यह तो न्यायमत है । वेदान्तमत से तो परमेश्वर में अभिन्न निमित्तोपादान बोधक श्लोकस्थचतुर्थचरणघटक हेतु पद हैं । एतादृश भगवान् कोशलेन्द्रसरकार के लिए हमारा नमस्कार हो । अर्थात् एतादृशानन्त गुणगणविशिष्ट भगवान् श्रीरामचन्द्र को नमस्कार करता हूँ । राघवेन्द्राय=राघवों में इन्द्र के समान यहां यदि राघव

हेतुस्तिष्ठतीति यथोक्तसाध्यमपि तिष्ठतीति सर्वसंमतं तथैवेहापि । किमत्र फलं मङ्गलस्येति जिज्ञासायाम् स्वर्गादिपरोक्षस्य फलस्य तु प्राप्तिरपितु ऐहिकस्यैव ऐहिकेपि न पुत्रादिः कारीरवत् दृष्टफलम् कारीरीयागे तथा सर्वेऽपि प्रकृते उपस्थितसमाप्तेरेव फलत्वात् । यदा चाकृ

स्करणीयाः श्रीरामानन्दाचार्याः साधुसमाजे तदितरसमुदाये चातीव प्रसिद्धा न तु कदाचिदश्रुतपूर्वा इति। पुनर्यस्याचार्य चूडामणेरानन्दाख्यभाष्यसूर्यप्रकाशः कुतैर्थिककुतर्कसंवादिताज्ञानलक्षणान्धकारनिवर्तने सर्वथा समर्थः एतेनेतरसमस्तव्याख्यानापेक्षया प्रकृतभाष्यरत्नस्योत्कृष्टत्वं द्योतितम्। एतादृशगुणगणशालिने श्रीरामस्वरूपाय महात्मने मदीयनमस्कारो भवतु नमामीत्यर्थः ॥२॥

एवं यथोक्तक्रमेण सम्प्रदायप्रधानाचार्यं नमस्कृत्य स्वाचार्यपर्यन्ताचार्यपरंपरां नमस्कर्तुं प्राह "दुःखसागरेत्यादि" प्रतिकूलवेदनीयदुःखबहुलसंसारसागरे सागरवत् अनादिकालप्रवृत्तेऽनन्तकल्याणगुणकभगवत्कृपामन्तरेणाशक्यसमुच्छेदे संमज्जतां स्वकीयशुभाशुभकर्मवलेन परिपच्यमानजीवनिकराणां दुःखमयसागरादुद्धाराय तत्परं प्रयत्नं कुर्वाणम् यतिवर्यम्—यतिषु साधुसमाजेषु श्रेष्ठं ब्रह्मनिष्ठम् उपासनया

तथा इन्द्र पद में कर्मधारय समास करें तब तो सर्वातिशायी बलवान् यह अर्थ होता है और यदि षष्ठीतत्पुरुष समास करें तब तो रघुकुलोत्पन्न राजाओं में सर्वश्रेष्ठ यह अर्थ होता है परमेश्वर होने के कारण से यह सर्वश्रेष्ठ हैं और श्री शब्द जो है वह सर्व जगत् का उत्पादकशक्तिलक्षणजनकतनया का बोधक है। शक्ति शक्तिमान् में तादात्म्य होता है ऐसा दार्शनिक लोग कहते हैं। इससे श्रीसीताजी का सान्निध्य भगवान् के साथ सर्वदा रहता है ऐसा अभिव्यक्त होता है। "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा-यथा" ऐसा श्रीरामायण में कहा है। यद्यपि लौकिक दृष्टि से कदाचित् वियोग प्रतिभास होता हैं तथापि वह ईश्वर की लीलामात्र है ॥ १ ॥

जिस प्रकार से देवभक्ति हितसाधक है उसी प्रकार गुरुभक्ति भी हितसा-

---

मानेन सफलता सिद्धा तदा यत्र मङ्गलाभावे समाप्तिस्तत्र जन्मान्तरीयतदनुमानबलान्निश्चियते, यत्र सद्भावेऽपि मङ्गलस्य समाप्तिव्यतिरेकस्तत्र विघ्नप्राचुर्यादिकं कारणम्। प्राचीनमतेन विघ्नध्वंसद्वारा समाप्तिफलम् नवीन-मतेतु विघ्नध्वंस एव फलम् "शक्तिर्निपुणतेत्यादिरीत्या समाप्तौ बुद्धिप्रतिभादिरेव कारणम् स्वतः सिद्धविघ्नविरहस्थले तु न विघ्नध्वंसो

साक्षात्कृतसाकेताधिपतिम् । स्वाचार्यं ज. गु. श्रीहनुमदाचार्यं स्वकी-
याचार्यपर्यन्तान्याचार्यश्चानिशमहर्निशमहमाश्रये दण्डवत् प्रणामादिना
तदीयानुसरणं करोमि तदीयचरणयोः प्रणतिप्रसूनाञ्जलिं समर्पयामी-
त्यर्थः ॥३॥

कथमेतावान् गुर्वादिनमस्कारकरणे भवता प्रायासस्तत्राह "श्रीम
दानन्दभाष्यस्येत्यादि । "प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते" इति
लौकिकन्यायेन कम्प्रयोजनविशेषमवलम्ब्य भवतामत्र प्रवृत्तिरिति लोका-
शयमाकलय्य स्वकीयप्रवृत्तौ फलविशेषदर्शनामाह श्रीमद्रामानन्दाचार्य-
कृतभाष्यस्य आशयमभिप्रायम् तदनुसारतः भाष्यानुसारेणैव विचार्य
सम्यगालोच्य एतेन स्वकृतित्वेनिखिलपूर्वाचार्याविरुद्धत्वं सूचितम् ।
ब्रह्मसूत्रेषु एषा मदीयबुद्धौ विद्यमाना वृत्तिर्विधीयते समीचीनरूपेण
सम्पाद्यते ॥४॥

धक हैं । इस नियम के अनुसार वृत्तिकार सर्वप्रथम स्वकीयइष्टदेवता को नम-
स्कार करके प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के नम-
स्कार को द्वितीयश्लोक द्वारा उपस्थित करते हैं । नमस्तस्मै इत्यादि जिस
श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिसम्राट् के भाष्यप्रकाश कुवादिप्रत्युपस्थापित कुतर्कज-
नित अज्ञानलक्षण अन्धकार को नष्ट कर देता है । तथा यतियों में श्रेष्ठ
जगत में अतिप्रसिद्ध जगदाचार्य श्रीरामानन्दाचार्य जी को मैं नमस्कार
करता हूँ ॥ २ ॥

दुःखबहुल संसाररूपीसागर में डूबते हुए जीवराशि का उद्धार करने में
सर्वदातत्पर यतियों में श्रेश्ठ तथा ब्रह्मज्ञानी स्वकीय आचार्य जगद गुरु श्री-
हनुमदाचार्यजी का सतत आश्रय लेता हूँ अर्थात् एकादश स्वकीय गुरु जी
को नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

हेतुरपि तु विघ्नात्यन्ताभावः समाप्तिकारणम् प्रतिबन्धकसंसर्गाभावकारण
ताया अन्यत्र व्यवस्थितत्वात् तत् सिद्धं यत् समाप्तये विघ्नाभावाय
मङ्गलाचरणमावश्यकमिति मनसि निधाय ग्रन्थादौ मङ्गलाचरणं कृतवान्
वृत्तिकार इति । विशेषस्तु मांङ्गलिको विचारो मत्कृतमङ्गलमालायामा
लोकनीयः । विस्तारभिया विरतो भवामीति स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यः ।

जिज्ञासाधिकरणम् ॥१॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ १ ।१।१ ।

श्रीरघुवरीयवृत्तिः

अथाखिलहेयप्रत्यनीकानन्तकल्याणगुणनिलयनिलिम्पपतिसमर्चितचरणः

वृत्तिविरवणम्-अथाखिलेत्यादि अखिलाः समस्ता ये हेयपदार्था दुःखादिकास्तेषां प्रत्यनीका बिरोधिनो ये कल्याणगुणाः श्रुतिप्रतिपादितसत्यकामादिकाः एतेषां कल्याणानामाधारभूताः । तथा ब्रह्मेन्द्रादिदेवैरपि संपूजितचरणः सर्वेश्वरः सर्वनियन्तृत्वशक्तियुक्तो भगवान् ऐश्वर्यादिविलक्षणगुणालङ्कृतः साकेताधिपतिः समस्तजडचेतनपदार्थजातस्य-नियामकः श्रीरामचन्द्रो द्वापरयुगस्य चरमभागे दुःखमहोदधावोतप्रोतान् जीवराशीनवलोक्य दिव्यचक्षुषा साक्षात्कृत्य दयासमुद्रस्तादृशजन्तूनां समुद्धाराय कृतविचारः, स्वयमेव व्यासरूपेण गृहीतावतारः मोक्षप्रयोजिकां वेदान्तार्थनिर्णयस्वरूपां विलक्षणामिमां ब्रह्ममीमांसां प्रणिनाय कृतवानित्यर्थः । "इमामित्यादि" ततश्चेमां ब्रह्ममीमांसामतिशयेन गम्भीराशयवतीन्तथाऽक्षरेणातिलघुशरीरमिति विमृश्य (विचार्य्य) प्रतिपन्नस्वकीयजनानामुपरि जातकरुणास्तामेव ब्रह्ममीमांसां विस्ताररूपेण व्याख्यातुकामो भगवान् कलियुगस्य प्रारम्भकाल एव भारतभूमौ पुनरपि देवदेवो भगवान श्रीरामो रामानन्दाचार्यशरीरं धृत्वा प्रसन्नाशयगभीरामानन्दभाष्यं सम्पादितवानित्यर्थः ।

जो यह अपने स्वकीयकण्ठ शोषण कर रहे हो वह किस कार्यविशेष के संपादन करने के लिए? इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर में-वृत्तिकार कहते हैं श्रीमदानन्दे'-त्यादि भाष्य के गंभीर आशय का समीचीनरूप से विचार करके ब्रह्मसूत्र के ऊपर भाष्यानुसारिणी सर्वजन बोध्य वृत्ति का मैं निर्माण करता हूं मंगल विघ्नविनाशद्वारा अभिलषितग्रन्थसमाप्ति में कारण है। इसलिए वृत्तिकार ने मंगलाचरण करके शिष्यपरम्परा का पालन किया है ॥ ४ ॥

सारबोधिनी-अखिल जो हेय-त्याज्य पदार्थ उन पदार्थों का विरोधि

सर्वेश्वरो भगवान्साकेताधिपतिर्द्वापरान्ते जनान् वृजिनार्णवनिमग्नानव लोक्य कृपाकूपारस्तेषामुद्धाराय कृतेक्षणः स्वयमेव द्वैपायनस्वरूपेणाध्यव-निमण्डलमवतीर्य प्रणिनाय परमपुरुषार्थजननीं त्रय्यन्तार्थनिर्णयलक्षणां ब्रह्ममीमांसाम् । इमामतिगभीराशयशालिनीं संक्षिप्ताञ्चोपलक्ष्याल्प

श्रीमदाचार्यसम्पादितभाष्येऽपि ये पदार्थास्ते पण्डितैरेव ज्ञातुं शक्या, न तु स्वल्पमतिभिरिति विचार्य सर्वसाधारणानामनायासेन तदर्थज्ञानाय, एषाऽल्पक्षरबालबोधगम्यातिमधुरावेदान्तसिद्धान्तबोधन-क्षमा वृत्तिर्मया विधीयते सम्पाद्यत इति भावः ।

अत्र वादिविप्रतिपत्त्या संशयो भवति यदिदं ब्रह्मविचारशास्त्रमा-रभ्यं नवेति । तत्र सिद्धस्वरूपे ब्रह्मणि ब्रह्मबोधकसत्यादिपदानां शक्तेर-भावादनारभ्यमेव प्रकृतशास्त्रमिति पूर्वपक्षः । अयं भावः यानीमानि वेदान्तवाक्यानि तेषां सिद्धब्रह्मात्मककार्यबोधकत्वं न संभवति यतो लौकिकवाक्ये कार्यान्वितपदानामेवार्थेन सह संगतिग्रहणदर्शनात् यथा लोके भवति वेदेऽपि तथैव भाव्यम्, "लोकावगतसामर्थ्यः शब्दो वेदेऽपि बोधक" इति न्यायात् लोके तु उत्तमप्रयोजकवृद्धस्य गामानये-त्यादिशब्दश्रवणानन्तरं मध्यमवृद्धस्य श्रोतुर्गवाद्यानयने प्रवृत्तिं दृष्ट्वा समीपस्थो बालको व्युत्पत्तिमिच्छन् मध्यमवृद्धस्य प्रवृत्तिर्ज्ञानपूर्विका स्वतन्त्रप्रवृत्तित्वात् मदीयस्वतन्त्रप्रवृत्तिवदित्यनुमानेन स्वात्मदृष्टान्तेन प्रवृत्तिलक्षणहेतुना प्रवर्त्तकज्ञाने पदसमुदायस्य सामान्याकारेण सामर्थ्यं ज्ञात्वा पुनरावापोद्वापाभ्यां कार्यान्विते एव गवादिपदानां सामर्थ्यं निश्चिनोति । यद्यप्यानयनादिपदमेव सर्वत्र वाक्ये न संभवति 'पश्यति, कुरु' इत्यादि पदानामपि सद्भावदर्शनात्तत्र व्यभिचार इति,, तथापि कार्यतावाचकपदं तव्यत्तव्यानीयरलिङ्लोडाख्यं भवत्येवेति कार्यान्विते एव पदानां शक्तिर्नतु कार्यताविरहितस्थले शक्तिर्ज्ञायते । वेदान्तवाक्ये

अनन्त संख्यातीत सत्य कामादिक श्रुतिप्रतिपादित कल्याण । (अप्राकृतिक परमेश्वरनिष्ठगुण विशेष) तादृशगुणविशेषका अधिकरण तथा देव एवं देवप-तियों से पूजित हैं पदपंकज जिनका एतादृश तथा सबका शासक भगवान्

श्रुतेरर्थान्तरयोजनायाऽनया तत्त्वबुभूत्सूनामप्यनर्थावाप्तिर्जातु स्यादिति संभाव्य स्वजनजातकरुणस्तां पुनः सुविशदं व्याचिख्यासुः कष्टेरादावधि भारतभूमिं भूयोऽपि स एव साकेतनिकेतनो देवदेवः श्रीरामानन्दस्वरूपं विधाय व्यरीरचदत्रानन्दभाष्यम् । श्रीमदाचार्यप्रसादिते चात्र

तु तादृश लिङादिकं कार्यतावाचकपदं न विद्यते, यतो वेदान्ते प्रतिपाद्यस्य ब्रह्मणः सिद्धत्वात् असिद्धे एव वस्तुनि क्रिया समर्था भवति न तु सिद्धे वस्तुनि यथा दण्डादीनां व्यापारोऽसिद्धघटमुद्दिश्य न सिद्धे वस्तुवि जायमानसान्निध्याद्यसफलो भवतीति यद्वस्तु सिद्धमेव तस्य निष्पादनमशक्यं पिष्टपेषणमिव च भवतीति ।

न च व्यवहारमन्तरेणापि "पुत्रस्ते जातः" इत्यादिवाक्यश्रवणानन्तरं श्रोतुर्देवदत्तस्य मुखप्रसादादिहेतुना देवदत्तगतसुखादिकं विज्ञाय तादृशविज्ञानोत्पादकत्वं पारिशेष्यात्तादृशपुत्रस्तेजातः, इत्यादिशब्दान्नानुमिनोति तत्कथमुच्यते सिद्धे पदे नास्ति संगतिरिति वाच्यम् । तत्र तादृशसुखज्ञानजनकत्वं "पुत्रस्ते जात" इति वाक्यबोध्यस्य प्रियासुखप्रसवस्येति वा निर्णेतुमशक्यत्वात् न तत्र पुत्ररूपोऽर्थो विलक्षणसुखजनकः प्रियासुखप्रसवस्यापि तत्संभवादिति । न च यत्र 'प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि मधुकरः पिबति' इत्यादिस्थलेऽपि कार्यपरतां नातिक्रामति यतः प्राथमिकव्युत्पत्तिनिबन्धनतया तदानुगुण्येनैव व्यवस्थानात् । एवं'पुत्रस्ते जात' इत्यत्र लक्षणावृत्यापि निर्वाह इति संभवति पूर्वपक्षिणामभिप्राय इति

"पिता ते सुखमास्ते" इति सिद्धार्थबोधकपदे शक्तेरभावात् कार्यतावाचकलिङादीनामभावेन शक्तिग्रहासंभवात्तादृशपदानि 'बोधजनकानीति यः पूर्वपक्षः कृतः स न युक्तः, यतः पिता तव सुखपूर्वकं तत्र विद्यते इत्यर्थकात 'पिता ते सुखमास्ते, इतिवाक्यादपि शाब्दबोधदर्शनात् अन्यथा स्वकीयपितुः सुखादिकमजानन् कथमिव श्रोता विश्वस्तो भवेत्

श्रीसाकेताधिपति श्रीरामचन्द्रजी द्वापर के अन्त, अवसानकाल में जीवराशि को दुःखमय संसार लक्षण समुद्रमें ओत-प्रोतहोते हुए (डूबते हुए) देख कर उस कृपासागर भगवान् ने उन जीवों को संसारिकदुःखजाल से उद्धार करने का

भाष्ये सर्वेऽप्यर्था विपश्चिद्धुरीणैरेवावगन्तुं शक्या न पुनः साधारणैरित्यवधार्य महाचार्यकृपावलम्बिना मया समेषां सुखादवगमायेयमतिसंक्षिप्ता वृत्तिर्विधीयते ।

अत्रेदं ब्रह्मविचारशास्त्रमारभ्यं न वेति संशयः सिद्धार्थे ब्रह्मणि व्यु-

---

भवति च मे परिवारः सुखी न वेति पृच्छतो जनस्य परिवारीय सुखविषयकं ज्ञानम् । अतः सिद्धमपि पदं बोधजनकं भवत्येव ।

अयं भावः अज्ञातान्यदेशभाषो द्रविड उत्तरभारतस्थितः कस्यचिद् गृहेवस्थितः पुत्रजन्मञ्च दृष्टवान् । ततः तत्र तद् गृहस्थितस्तज्जनः भवनात् पुत्रजन्मवार्ता वार्ताहारेण सह प्रेषितवान् पितुः सकाशम् तेन वार्ताहारेण सह द्रविडोऽप्यभिज्ञो जातः । तत्र गत्वा स वार्ताहारः चैत्रं कथयति "चैत्र पुत्रस्ते जातः" इति कथयित्वा पुत्रजन्मचिन्हितवस्त्र मर्पितवान् ततः श्रोतुर्मुखविकाशादिलिङ्गेनाज्ञातभाषोऽपि द्रविडो निश्चिनोति यदयं दृष्टसुतज्ञानवान् । एवं प्रकारेणलिङादिपदाभावेऽपि शाब्दबोधदर्शनात् न कार्यताबोधकस्थले एव शक्तिः । न च तत्र प्रियासुखप्रसवस्यापि संभवात् न पुत्रजन्मश्रवणं सुखहेतुरिति वाच्यम् पुत्रजन्मसूचकपटादिप्रदर्शनवत् प्रियासुखप्रसवसूचकहेतोरभावात् । एवं यदा उक्तरीत्या सिद्धवस्तुनि प्राथमिकशक्तिग्रहसंभवात् "प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि मधुकरः पिबति" इत्यादिप्रसिद्धपदसमभिव्याहारस्थलेऽपि पदानां व्युत्पत्तिर्जायते एव । तदा सिद्धार्थबोधकब्रह्मण्यपि सत्यादिपदानां शक्तिग्रहसंभवात्तेन सत्यज्ञानादिपदेन ब्रह्मविषयकबोधः स्यादेव । तस्मात् ब्रह्मविचाराख्यशारीरकशास्त्रस्यारम्भोऽवश्यमेव कर्त्तव्य इति सिद्धान्ताशयः । तथा च सूत्रे "अथशब्द" इत्यादिः । अथ योऽयमथशब्दो दृश्यते. स किमारम्भार्थको यथा अथ शब्दानुशासनम्, अथ योगानुशासनम् इत्याद्यौ सूत्रघटकोऽथ शब्दो व्याकरणशास्त्रस्य योगशास्त्रस्य

विचार करके स्वयमेव द्वैपायन व्यास रूप से पृथ्वीमण्डल पर अवतरित होकर के पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष का प्रयोजक वेदान्तार्थ के निश्चित करने वाली इस ब्रह्ममीमांसा का अर्थात् विचारशास्त्र का निर्माण किया ।

त्पत्त्यसंभवादनारभ्यमिति पूर्वपक्षः। "पिता ते सुखमास्ते" इत्यादि वाक्यैर्बोधदर्शनात् सिद्धार्थे ब्रह्मण्यपि व्युत्पत्तिसंभवादारभ्यमेवेदं शारीरकं शास्त्रमिति सिद्धान्तः। तथा च सूत्रेऽथ शब्दः आनन्तर्यरूपार्थमभिधत्तेऽतः शब्दोऽतीतस्य हेतुत्वम्। एवञ्च यतः पूर्ववृत्तानां कर्मणां स्वर्गा-

---

चारम्भं दर्शयति योगशास्त्रनामकशास्त्रमारभ्यते व्याकरणनामकं शास्त्रमारभ्यते। तद्वत् प्रकृते ब्रह्मविचार आरभ्यते इत्ययमर्थः स्यात्। यद्वा मंगलार्थकः "ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभा"विति–स्मृतिदर्शनेन मङ्गलार्थकोऽपि भवति।

ततश्च मङ्गलहेतुत्वात् प्रत्यहं ब्रह्मविचारः कर्तव्यार्थः स्यात् यद्वा पूर्वप्रकृतापेक्षो यथा घटो नित्योऽथानित्य इति वाक्यघटकोऽथशब्दः पूर्वप्रकृतं घटमपेक्षते तथा प्रकृतेऽपि पूर्ववृत्तं कर्मापि अपेक्षेत। अथवा आनन्तर्यार्थकः यथा भुक्त्वा अथ व्रजतीत्यत्र भोजनस्यानन्तर्यं गमनं दर्शयति तद्वत्प्रकृतेऽपि ब्रह्मविचारः कस्यचिदानन्तर्यमपेक्षेतेति विमृश्य प्राह— सूत्रेऽथ शब्द आनन्तर्यमभिधत्ते" इति। अयं भावः योऽयं सूत्रघटकोऽथ शब्दः, स न आरम्भार्थस्य वाचको यतः प्रत्यधिकरणमारम्भस्याप्रस्तूयमानत्वात्। नापि मङ्गलार्थकः अथ शब्दस्य मङ्गलार्ये शक्तिलक्षणयोरभावात् पदार्थस्यैव वाक्यार्येऽन्वयो भवति, न चेह मङ्गलमथशब्दस्यार्थः, ततस्तर्हि पूर्वोपदर्शितस्मृतिव्याकोप स्यादिति वाच्यम्, श्रवणमात्रेणैवाथशब्दस्य मङ्गलप्रयोजकत्वात्। अन्यार्थनीयमानपूर्णकलशदर्शनवीणाशङ्खादिध्वनिवदिति। नवा पूर्वकृतापेक्षोऽपि फलतस्तस्यानन्तर्याव्यतिरेकात्। अथवा यत्र कल्पान्तरोपन्यासस्तत्राथशब्दः पूर्वप्रकृतापेक्षो भवति, नात्र कल्पान्तरोपन्यासस्तस्मान्न पूर्वप्रकृतापेक्षकोऽथशब्दः प्रकृते। किन्तु आनन्तर्यार्थक एव, तथा च स्वाध्यायाद्यनुष्ठानयोरानन्तर्य-

परन्तु इसको अत्यन्त गम्भीर आशयवाली तथा अत्यन्त शब्दसंक्षेप को देखकरके अल्पश्रुत कुतर्कशील व्यक्तियों से अर्थान्तर में योजित प्रकृत मीमांसा से वास्तविक तत्त्व विषयक ज्ञानेच्छावान् व्यक्ति को भी कदाचित्

दिरूपानित्यसातिशयफलदायित्वं वर्त्तते अतो हेतोर्निरतिशयनित्यापवर्गरूपफलावाप्तये कर्मज्ञानानन्तरं ब्रह्मणः परमपुरुषश्रीरामस्य उक्तंचाचार्यसार्वभौमभगवच्छ्रीरामानन्दाचार्ययतिराजप्रणीते ब्रह्मसूत्राणां श्रीमदानन्दभाष्ये—"ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीयनिरस्ताखिलदोषमनवधि-

---

मभिदधाति प्रकृतेऽथशब्दः इति सूष्ठूक्तं वृत्तिकृता, तथाच सूत्रेऽथशब्द आनन्तर्यरूपार्थमभिधत्त इति । अथशब्दस्यानन्तयार्थकत्वं समर्थ्य सूत्रघटकस्य "अतः" शब्दस्यार्थं परिस्फोरयितुमाह "अतः शब्दोऽतीतस्य हेतुत्वमित्यादि । योऽयं सूत्रघटकोऽतः शब्दस्स हेतुरूपमर्थं बोधयति, यस्मात्कारणाद् वेदः स्वयमेव पूर्ववृत्तस्य कर्मणोऽनित्यफलकत्वं दर्शयति, तथा ब्रह्मज्ञानस्य नित्यनिरतिशयमोक्षफलकत्वञ्च तस्मात्कारणात् कर्मजनितैहिकामुष्मिकफलविरक्तोऽधिकारी ब्रह्मविचारमेव कुर्यादिति न च तर्हि कर्मानुष्ठानस्य वैयर्थ्यमापद्यत इति वाच्यम् कर्मणामनुष्ठानेन पूर्वोपचितदुरितकर्मणां विनाशद्वारा वैराग्योत्पादनेन ब्रह्मज्ञानोत्पादकत्वेन सार्थक्यात् । तदुक्तं भाष्यकारेण "कर्म-ज्ञानानुष्ठानयोश्चित्तकल्मषापनयनपूर्वकवैराग्योत्पादनद्वारा च ब्रह्मज्ञानं प्रति साधनत्वेन तयोर्हेतुहेतुमद्भावतयाऽपीति" [आनन्दभाष्यम् १।१।१] पूर्वोपचितदुरितक्षयस्य ब्रह्मज्ञानप्रयोजकतायां भवति शास्त्रं प्रमाणम् , तथाहि—ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः" तावत्पर्यन्तं नोत्पद्यते ज्ञानं यावत्पर्यन्तं हृदयस्थितदुरितकर्मणां विनाशो न भवति, तथा न भवेद् यावत्पर्यन्तं वैराग्योदयः, अतः पूर्वोपचितदुरितकर्मणः विनाशायावश्यमेव कर्मानुष्ठानं कर्तव्यम् । तदुक्तं "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः । नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् । ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेदिति । ननु कर्मानुष्ठानवैराग्यादनन्तरं ब्रह्मजिज्ञासा स्यादिति कथितं तत् कथं स्यात्, इहामुत्रार्थफलभोगविरागस्यैवानुपपत्तेः सुखं हि फलम

अनर्थ की प्राप्ति हो जायेगी ऐसी संभावना से अपने भक्तों के ऊपर समुत्पन्न है दया जिन को एतादृश भगवान् सर्वेश्वर श्रीराम पुनः विशदरूप से इस मीमांसा की व्याख्या करने की इच्छा से कलियुग के प्रारम्भकाल में इस भारत

कातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणं भगवन्तं श्रीराममेवाह। सामान्यवाचकानां पदानां विशेषार्थे पर्यवसानात्। तदाह भगवान् वृत्तिकारः—विशेषार्थेन सामान्यार्थोऽवसीयत इति बो०वृ०)" जिज्ञासा विचारः कर्तव्यः इत्यर्थः। एतदुक्तं भवति जातसंस्कारः पुमानादौ वेदमधीत्य पूर्वमीमां-

---

नुकूलवेदनीय—मिष्टलक्षणत्वात् फलस्य। न चानुरागकारणे वैराग्यं सम्भवति। न च वैषयिकसुखे दुःखानुषङ्गदर्शनात् ततो वैराग्यमिति चेत् तदा सुखानुषङ्गदुःखेऽरागः कुतो न स्यात्। तस्मात् सुख उपादीयमाने दुःखपरिहारः कर्तव्यः। अवर्जनीयतयाऽऽगतदुःखं परिहृत्य सुखोपभोगमात्रं करिष्यति। कदाचिदतिभीरुर्विषयसुखं स्वोपसृष्टं त्यजेदपि परन्तु स्वर्गसुखं नित्यम् "यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं स्वःपदास्पदम्, अपाम सोमममृता अभूम" इत्यादिना स्वर्गसुखस्य नित्यत्वश्रवणात् तत्कथं तादृशसुखेभ्यो विरक्तो भूत्वा ब्रह्मविचारं कुर्यादिति। इत्यादिशङ्कां मनसि निधायातः शब्दस्य हेत्वर्थकतां प्राह। ऐहिकामुष्मिकफलानामनित्यत्वं श्रुतियुक्तिभ्यां स्वयमेवानुपदं दर्शयिष्यति। ततस्तेभ्यो विरक्तः प्रवर्तत एव ब्रह्मजिज्ञासायामिति।

"एवं च पूर्ववृत्तानां कर्मणामित्यादि वृत्तिः" यस्मात् कारणात् पूर्वनिष्पन्नाः कर्मसमुदायाः अनित्यसातिशयस्वर्गादिकफलसम्पादकाः (स्वर्गः क्षयी भावत्वे सति कार्यत्वात्' इत्यनुमानेन तस्य क्षयित्वम्, तथा स्वर्गे केचनाधिकसुखभाजो वाजपेयादिकर्तारः, केचनाल्पफलभाजः, तत्र परसम्पदुत्कर्षो हीनसम्पदं दुःखीकरोति। यत् तत्वश्रवणमपि स्वर्गस्यापेक्षिकमेव। "आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते" इति नियमात्। अतोऽनित्यस्वर्गसुखादपि वैराग्यं सुकरमेव नित्यसुखमिच्छताम्) वर्तन्ते तस्मात्कारणान्निरतिशयमोक्षात्मकसुखप्राप्त्यर्थं मुमुक्षुणा

भूमी में पुनः "रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले" इस आगम वचन प्रमाणानुसार वह भगवान् साकेतवासी देवाधिदेव श्रीरामजी ने श्रीरामानन्दाचार्य के स्वरूप को धारण करके आनन्द भाष्य को बनाया। (एतावता इस

सादिशास्त्रसहकारेण वेदार्थमवगच्छति । तेन च पूर्वभागावसेयकर्मणाम-ल्पाध्रुवफलकत्वमुत्तरभागावसितब्रह्मज्ञानस्य चानन्तध्रुवफलकत्वमापाततो विज्ञाय तल्लब्धये ब्रह्मजिज्ञासायामेव प्रवर्तते । कर्मणामनित्यफलकत्वं

कर्मज्ञानादनन्तरं परमपुरुषसाकेतनिवासिनो ब्रह्मपदाभिधेयस्य जिज्ञासा-विचारोऽवश्यमेव सम्पादनीय इत्यर्थ इति ।

सूत्रघटकब्रह्मजिज्ञासाविशेषणीभूतो ब्रह्मशब्दोमहापुरुषादिपदवेद-नोयनिरस्ताखिलदोषमनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणाकरं सर्वे-श्वरं भगवन्तं श्रीराममेव प्रतिपादयति सामान्यवाचकोऽपि शब्दो विशे-षार्थः परको जायते यथा द्रव्यं दक्षिणेत्यत्र द्रव्यशब्दः सुवर्णं बोधयति, तद्वत् प्रकृते सामान्यार्थकोऽपि ब्रह्मशब्दः विशेषं श्रीराममेव कथयति तदुक्तं बोधायनवृत्तिकृता महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्येण "विशेषार्थेन सामा-न्यार्थोऽवसीयते" इति ।

ब्रह्मजिज्ञासेत्यत्र ब्रह्मणो जिज्ञासा ब्रह्मजिज्ञासेत्यत्र या षष्टी सा कर्मषष्ठी कर्तृकर्मणोः कृतीति सूत्रेण कृद्योगे च षष्ठी समस्यते' इति नियमात् "प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते" इति निषेधस्य न प्राप्तिः। अथवा शेषलक्षणेयं षष्ठीति न कोपि दोषः पदमादधाति । ननु तर्हि सर्वत्र शेषषष्ठ्यैव कार्यसंभवात् षष्ठीसमासप्रतिषेधसूत्राणां का गतिरि-तिचेत् तेषां स्वरादिचिन्तायामुपयोगसम्भवान्न लोक उपयोग इति । न च ब्रह्मशब्दो वेदेऽपि प्रयुज्यमानो दृश्यते यथा ब्रह्मोदकम्, क्वचित् ब्राह्मणजातौ ब्रह्महत्या, क्वचित् परमात्मनि तदा प्रकृते कस्य ब्रह्मणो जिज्ञासेति संशये भाष्यकारेण समर्थितं यत् कल्याणगुणाकरस्य श्रीराम-स्यैवात्र ब्रह्मपदेन ग्रहणमिति "ब्रह्म शब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीयनि-रस्ताखिलदोषमनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणं भगवन्तं श्रीरामभे-वाह सामान्यवाचकानां पदानां विशेषार्थपर्यवसानात् तदाहवृत्तिकारः

ब्रह्मसूत के उपर में जो इतर भाष्य हैं. तदपेक्षया प्रकृत भाष्य में गौरवातिशय तथा प्रामाणिकत्व व्यवस्थित होता है । क्योंकि भाष्यान्तर तो मनुष्य निर्मित हैं और प्रकृत भाष्य तो सर्वेश्वरावतार आचार्य श्री से निर्मित है ।)

ब्रह्मज्ञानस्य च नित्यफलकत्वमाहुः श्रुतयः। "प्लवा ह्येतेऽदृढा यज्ञरूपाः" (मु० १।२।७) "तद् यथेह कर्मचितोलोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" (छा०८।१।६) तमेव विदित्वा" (श्वे० ३।८) "ब्रह्मवि-

---

"विशेषार्थेन सामान्यार्थोऽवसीयत इति" (आनन्दभाष्यम् १।१।१) अतो न जात्याद्यर्थान्तरमाशङ्कितव्यम्।

'एतदुक्तं भवतीत्यादि' गुरुणाकृतसंस्कारो ब्राह्मणो वेदाध्ययनयोग्यतामासाद्याधीत्य च साङ्गवेदराशिं पूर्वमीमांसादिशास्त्रसहकारेण वेदार्थमवधार्य कर्मकाण्डभागस्थितकर्मणामनित्यफलदायकत्वमवगत्य वेदान्तप्रतिपादितब्रह्मात्मकश्रीरामज्ञानस्य नित्यनिरतिशयमोक्षफलकत्वमापाततो ज्ञात्वा मोक्षार्थं ब्रह्मजिज्ञासायां प्रवृत्तिं कुर्यादिति मुकुलितोऽर्थः। यानि कर्माणि तान्यनित्यफलकानि ब्रह्मज्ञानं तु नित्यफलप्रयोजकमिति यत् पूर्वं कथितं तत्र हेतुर्न प्रतिपादितः, हेतुप्रतिपादनायानेकां श्रुतिं प्रदर्शयति "प्लवा एतेऽदृढा यज्ञरूपाः" इत्यादि (एते वाजपेयादयो यागाः अदृढाः, प्लवा—अस्थिराः, येषु यागेषु अवरं—हीनम् अष्टादशसंख्या यजमान—तत्पत्न्यृत्विगादयो भवन्ति। एतद् यज्ञकर्मैव श्रेयो ये मन्यन्ते, यज्ञकर्तारः पुनः पुनरपि जरामृत्युलक्षणं संसारमेव प्राप्नुवन्ति, न कदाचिद् दुःखबहुलात् संसारान्निवर्तन्त इत्यर्थः। तद्यथेत्यादि—यथेह लोके कृष्यादिकर्मणा सेवितो धान्यादिको भोगेन कालपरम्परया क्षीयते इति प्रत्यक्षादेवाधिगतम्। एवमेव पुण्येन कर्मणा सेवितः स्वर्गादिलोको भोगेन क्षीयते, इति ज्ञायते। तदुक्तं भगवता श्रीकृष्णेन "ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते"। तदिह वैदिककर्माचरणेनापि शाश्वतसुखं न प्राप्यतेऽपि तु क्षणिकमेव सुखं दुःखमिश्रितमेव प्राप्तं भवति।

श्रीमान् आचार्य के द्वारा इस भाष्य में प्रतिपादित पदार्थ विद्वान् से जानने के योग्य हैं परन्तु सकल साधारण व्यक्ति इसको नहीं जान सकते हैं इसबात का आकलन करके महाचार्य की कृपा को अवलम्बन करके, सबको

दाप्नोति परम्'' (तै०२।१।१) इत्यादि रूपाः । तस्मादारम्भणीयमेवेदं ब्रह्मविचारशास्त्रम् ॥१॥

इति श्रीरघुवरीयवृत्तौ जिज्ञासाधिकरणम् ॥१॥

इत्याकलय्य विवेकिनस्ततो निवृत्यैकान्तिकसुखसाधने ब्रह्मज्ञान एव प्रवर्तन्ते इति कर्मणामनित्यफलकत्वं व्यवस्थाप्य ब्रह्मज्ञानस्य नित्यसुखसाधनत्वं दर्शयितुं श्रुतिरुदाहरति—''तमेव विदित्वेत्यादि'' चिदचिद्विशिष्टं परमात्मानं विदित्वा सम्यग् ज्ञात्वा अतिमृत्युं मोक्षमवाप्नोतीत्यर्थः । ब्रह्मवित् परमात्मज्ञानवान् परं–संसारधर्मातीतं साकेताधिपतिं प्राप्नोतीति श्रुत्यर्थः ।

अत्र ब्रह्मज्ञानवन्तमुद्दिश्य परप्राप्तिर्विधियते । तत्रोद्देश्यतावच्छेदकप्रयोज्यत्वं विधेये भवतीति नियमः । यथा धनवान् सुखीत्यत्र सुखात्मकविधेये उद्देश्यतावच्छेदकधनप्रयोज्यत्वं भवति यदैव धनवान् तदैव सुखि न तु धनविरहकाले सुखि । एवं यदा ब्रह्मज्ञानवान् तदैव परप्राप्तिमान् न तु ब्रह्मज्ञानविरहे, इति उद्देश्यतावच्छेदकब्रह्मज्ञानप्रयोज्यत्वं परप्राप्तौ प्रदर्शयता ब्रह्मज्ञानस्य कारणत्वं समर्थितमेवेति सिद्धमात्मज्ञानस्य पुरुषार्थसाधनत्वम् , तादृशं च ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मविचारशास्त्रप्रयोज्यमिति ।

यतः कर्मणामनित्यसातिशयफलकत्वं श्रुत्यादिप्रमाणेन समधिगतं तथा नित्यनिरतिशयसाकेतप्राप्तिरूपं फलं ब्रह्मज्ञानस्य फलमिति प्रदर्शितश्रुतिस्मृतिभिः समर्थितं तस्मात् कारणात् प्रकृतमिदं ब्रह्मविचारशास्त्रमवश्यमेवारम्भणीयमिति उपसंहरन्नाह ''तस्मादारम्भणीयमेव ब्रह्मविचारशास्त्रमिति यद्यपि यद् वस्तु संदिग्धं भवति तदेव जिज्ञास्यते संदिग्धे न्यायः प्रवर्त्तते, इतिनियमात्

सुखपूर्वक इन पदार्थों का बोध हो, इसलिए अतिसंक्षिप्त इस श्रीरघुवरीय वृत्ति को मैं बनाता हूं ।

यद्वस्तु संशयरहितं तन्न जिज्ञास्यते, यथा माध्यन्दिनादित्याऽऽलोकाऽऽलोकितः समनस्कचक्षुःसन्निकृष्टो घटादिपदार्थव्रातो नहि केनापि जिज्ञासितो भवति। तत्कस्य हेतोः? तम्प्रति घटादेर्निश्चयात्। तथा च यत्र यत्र जिज्ञासा तत्र तत्र संशय इति व्याप्तिरन्वयमुखी, यत्र संशयो

सारबोधिनी—यहां यह संशय होता है कि— इस ब्रह्म विचारशास्त्र का आरम्भ करना चाहिये वा नहीं, एतादृशसंशय में जब ब्रह्म पदार्थ सिद्ध है तो सिद्ध वस्तु में पद की शक्ति नहीं होती है, किन्तु जो पदार्थ क्रिया से सम्पाद्यमान होता है, उसी में व्यवहारादिद्वारा पद की शक्ति का ग्रहण होता है, लोक से अवगत सामर्थ्य वाला शब्द ही वेद में भी शाब्दबोध का जनक होता है, तो प्रकृतसिद्धार्थकब्रह्मादिपदार्थोंमें पदों की शक्ति नहीं होने से ब्रह्मविचारशास्त्र का आरम्भ नहीं होना चाहिये यह पूर्व पक्ष होताहै॥

इस प्रश्न के उत्तर में वृत्तिकार कहते हैं कि— 'पिता ते सुखमास्ते' इत्यादि, इसका अभिप्राय यह है कि— यद्यपि व्यवहाराधिगमसमय में 'घटमानय घटंनय प्रसादं पश्य घटं कुरु' 'घट लाओ घट ले जाओ, महल देखो, घड़ा बनाओ' इत्यादिस्थल में लिङादिककार्यान्वितघटादिशब्द की

टिप्पणी— यहां कर्म तथा ज्ञान के विषय में कुछ विचार किया जाता है, अपर भक्तिनामक ज्ञानसे अतिरिक्त कर्म से मोक्ष होता है, वा कर्मरहित केवल ज्ञान से मोक्ष होता है। तो इसमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, क्योंकि— यदि केवल कर्म से मोक्ष हो तो यह मोक्ष कर्मफल का अन्यतम कहलाया, तथा ब्रह्मविचार करने के लिये जो व्यास भगवान् ने इतना बड़ा शास्त्र उत्तर मीमांसा के लिये कण्ठशोषण किया, वह निरर्थक हो जायगा। द्वितीय पक्ष—ज्ञानमात्र से मोक्ष होता है, यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि-तब एक तो अपसिद्धान्त हो जायगा, तथा नैष्कर्म्यवाद की भी आपत्ति आजायगी इसलिये कर्मसहकृतज्ञान मोक्षका कारण होता है, यह श्रुतिस्मृतिसिद्ध तथा बोधायनादि महर्षियों का अनुमत पक्ष ही श्रेष्ठ है। श्रुति भी कहती है कि—"अन्धंतमः

नास्ति तत्र जिज्ञासाऽपि न भवति, यथा समनस्केन्द्रियसंयुक्तस्फीतालोकवर्तिघटे। एवं च प्रकृते प्राणिमात्रस्याऽऽत्मनि संशयाभावेन कथं जिज्ञासा स्यात्?

ब्रह्मशब्दस्य व्यापको देहादीनां परिणमयिता यस्तस्यैव नाम ब्रह्म

शक्ति का निर्धारण होता है, परन्तु पश्चात् लाघव होने से घटादिपद की शक्ति घटत्वावच्छिन्नमात्र में मान्य होती है, अन्यथा यदि एकान्तरूप से कार्यान्वित पदमें ही शब्द की शक्ति माने तो कार्येतरप्रत्यमभिव्याहृतवाक्य से शाब्दबोध नहीं होगा, परन्तु 'पुत्रस्ते जातः' 'तेरा लड़का हुआ है, इत्यादि वाक्य के श्रवण के बाद श्रोता के मुखप्रसन्नतादिहेतु से श्रोता के ज्ञान का अनुमान कर तादृशसुखज्ञान का जनक 'पुत्रस्ते जातः' यह शब्द निश्चित किया जाता है, नहीं कहो 'पुत्रस्ते जातः' यहां 'तं पश्य' तेरा पुत्र हुआ है उसे देखो' इस प्रकार से दर्शनक्रिया का अध्याहार करके ही शाब्दबोध होता है, तो वह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि—सर्वत्र क्रिया का अध्याहार

प्रविशन्तीत्यादि," वह अत्यधिकतम अन्धकार में पड़ता है जो अविद्याशब्दवाच्य केवल कर्म का अनुष्ठान करता है, और जो व्यक्ति स्वाधिकारोचित कर्म छोड़कर केवल उपासना करता है वह तो ओर अत्यधिक गाढान्धकार में पड़ता है, इत्यादि श्रुति स्मृतियों से सिद्ध होता है कि—न केवल कर्मानुष्ठान करने से मोक्ष होता है, न वा केवल ज्ञान से मोक्ष होता है, अर्थात स्वातन्त्र्य से एक किसी को भी मोक्षजनकत्व नहीं है, किन्तु दण्डचक्रादिन्याय से मिलित ज्ञानकर्म को मोक्ष साधनत्व प्राप्त है। "विद्यां चाविद्यां चेत्यादि-श्रुति से सिद्ध होता है कि- विद्या तथा अविद्या इन दोनो मिलित से मोक्ष होता है, उनमें कर्म अङ्ग है, ज्ञान अङ्गी है, नित्यनैमित्तिकादि कर्म ज्ञानोत्पत्ति प्रतिबन्धकदुरितकर्म के विनाशद्वारा ज्ञान में सहायक होता है, ज्ञानशब्द का अर्थ है-भक्ति जिस का अपर पर्याय है, एतादृश तैलधारावत् विच्छेदरहित दर्शनात्मक ज्ञान। ये दोनों मिलित होकर मोक्षसाधक होते हैं, नतु तृणारणिमणिन्याय से प्रत्येक मोक्ष कारण है, अपितु दण्डचक्रादिन्याय से मिलित ही कारण हैं, विशेष

भवति, तादृशमात्मरूपं ब्रह्म सर्वस्यापि प्रसिद्धमेवाहम्प्रत्ययात् । न चाहम्पदवाच्यस्तु देह एव, अहं स्थूलोऽहं कृश इतिप्रत्ययदर्शनात् न तु तदतिरिक्तः कश्चिदात्मा निश्चित इति वाच्यम्, देहस्याहम्प्रत्ययगम्यत्वे योऽहं बालावस्थायामितरमन्वभूवं स एवाहमिदानीं वृद्धावस्थायां पौत्रा-

होता है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है । और 'पुत्रस्ते जातो मृतश्च' पुत्र तेरा हुआ लेकिन मर गया इत्यादिस्थल में 'पश्य' इत्यादि का अध्याहार भी बाधित है । अतः क्रियान्वित (पद) में ही शक्ति है, यह नियम नहीं है किन्तु अकार्यबोधक लौकिक पद का भी प्रयोग होता है; जैसे—'कमनीयनारीसमुदायसुशोभितदेवताओं का विहारस्थल पर्वतराज सुमेरु है, इसमें कार्यतावाचक कोई भी पद नहीं है, तथापि शाब्दबोध होता है, अन्यथा तादृशपदसमुदाय- प्रयोग निरर्थक हो जायगा । एवं वेदान्तमें भी परमात्मबोधकशब्दप्रयोग सार्थक होता है, इस अभिप्राय से वार्तिककार ने लिखा कि— 'पिता ते सुखमेधते' इत्यादि' "पिता ते सुखमास्ते" इत्यादि लौकिकवाक्य से शाब्दबोध देखने में आता है तो इसी प्रकार से सिद्धार्थकब्रह्मपद में शक्तिग्रह को सम्भावित होने से इस शारीरक वेदान्तशास्त्र का आरम्भ जरूर करना चाहिये । यह सिद्धान्त हुआ ।

जिज्ञासु व्यक्ति यह विषय आनन्दभाष्य में देखें । मैंने केवल दिग्दर्शनमात्र के लिये थोड़ा लिखा । बहुत लोग अविद्यानामक कर्म भिन्न अनिर्वचनीय मानकर उस अविद्या को जगद्विभ्रम के प्रति उपादान कारण मानते हैं । परन्तु यह उनका कथन युक्तिसिद्ध नहीं है, 'तथाहि' यहां अविद्याघटक जो नञ् पद है, अर्थात् न विद्येति अविद्या इस प्रकार से समास के अन्तर्गत जो नञ् है, उसका क्या अर्थ है ? क्योंकि—समास के अन्तर्गत नञ् के छ अर्थ होते है, 'तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं, तदल्पता । अप्राशस्त्य, विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः । तत्सादृश्य, अभाव, तदन्यत्व, तदल्पता, अप्राशस्त्य और विरोध । जैसे—'अनश्वो गर्दभः' यहां अश्वसदृश गर्दभ है, 'अघटं भूतलम्' यहां घटाभाववाला भूतल है यहां नञ् अभावार्थक है, 'अघटः पटः' यहां पर नञ् घटभेदार्थक है, 'अनुदरा कन्या' यहां नञ् अल्पतार्थक अल्पोदर वाली कन्या है, 'अब्राह्मणो वार्धुषिकः,

दिकमनुभवामीत्याकारकप्रतिसन्धानं न स्यात्. अवयवोपचयाभ्यां शरीरस्य प्रतिक्षणोत्पादविनाशदर्शनात्, तस्माद् देहादिनाऽऽत्मा, किन्तु देहेन्द्रियादिभिन्नः स्फुटतरानुभवसमर्थितः, स च कीटपतङ्गादारभ्य देवर्षिपर्यन्तप्राणिमात्रस्य सुप्रसिद्ध एव. नहि आत्मनि

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र में जो 'अथ' शब्द है, वह आनन्तर्यरूप अर्थ को कहता है, अर्थात् सूत्रघटक अथ शब्द का अर्थ आनन्तर्य है, अथ शब्द के चार अर्थ होते हैं आनन्तर्य, आरम्भ, मङ्गल, और पूर्वप्रकृतापेक्ष। उनमें 'अथ योगानुशासनम्' यहां अथशब्द आरम्भार्थक है, इस योगशास्त्र का आरम्भ होता है, स्थलविशेषमें मङ्गलार्थक होता है, कहीं आनन्तर्यार्थक, कहीं पूर्वप्रकृतापेक्ष होता है, जैसे 'घटो नित्योऽथाऽनित्यः' यहां पूर्वप्रक्रान्तघट का बोधकविमर्शवाक्यघटक अथ शब्द है। परन्तु प्रकृत में आनन्तर्यार्थक है तदितर अर्थ प्रकृत में उपयोगी नहीं है। और सूत्रघटक जो अतः शब्द है, वह पूर्ववृत्त अर्थात् अतीत जो कर्म है, उसके कारणत्व का बोधक है, तब यह सूत्रार्थ निष्पन्न होता है कि- जिस से पूर्ववृत्तकर्मों को स्वर्गादिरूप अनित्य सातिशयविनश्वरफलों की उत्पादकता है, इस कारण से नित्यनिरतिशयसाकेतप्राप्तिरूप जो अपवर्गलक्षणफल हैं उसकी प्राप्ति

यहां अप्रशस्त ब्राह्मण वार्धुषिक हैं, असुरः, अधर्मः' यहां नञ् विरोधार्थक है। सुरविरोधी राक्षस, धर्मविरोधी पाप यह अर्थ होता है, इस प्रकार प्रकृत में अविद्याघटकनञ का अर्थ अभाव है। अथवा विरोध अर्थ है ? वा भेद है। तो उनमें प्रथम अर्थ ठीक नहीं है, क्योंकि तब तो विद्या (ज्ञान) के अभाव का नाम हुआ अविद्या तो जिस प्रकार वेद्य जो घटपटादिक उसका जो अभाव घटपटाद्यभाव उसको कोई अविद्याशब्द से व्यवहार नहीं करता है, न वा घटाभाव को अनिर्वचनीय मानता है, वैसे ज्ञानाभावरूप अविद्या भी अनिर्वचनीया सिद्ध नहीं होती है। द्वितीयपक्ष विरोध अर्थ भी ठीक नहीं है, क्योंकि-- तब तो विद्या का जो विरोधी है, उसको अविद्या कहियेगा, तबतो विद्या (ज्ञान) का विरोधी संशयविपर्ययज्ञान भी अविद्याः-- पदवाच्य हो जायगा, और संशयविपर्यय को तो आपभी अविद्या नहीं कहते हैं। इसलिये द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है। तृतीय

कश्चित् सन्दिग्धेऽहमस्मि नवेति जिज्ञासाव्यापकस्य संशयाभावात्, व्याप्यलक्षणाया जिज्ञासाया अप्यभाव एव प्राप्तो भवति, वह्न्यभावे धूमाभाववदिति कथं प्रकृते जिज्ञासेति पूर्वपक्षमाकलय्य वृत्तिकारः प्राह "तस्मादारम्भणीयमेवेदं ब्रह्मविचारशास्त्रम्" अयं भावः– यद्यपि

के लिये कर्मज्ञान के बाद में परम पुरुष भगवान् साकेताधिपतिश्रीरामस्वरूप-ब्रह्मविषयकजिज्ञासा अथात् तादृशब्रह्म का विचार जरूर ही करना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि– शास्त्रविधि प्रकार से उपनयनादि संस्कार हो गया है जिसका एतादृशद्विजाति पुरुष विधिवत गुरु के समीप में साङ्ग सरहस्य स्वाध्यायराशि का अध्ययन कर पूर्वमीमांसा इतिहास पुराणादिशास्त्र की सहायता से वेदार्थ का ज्ञानसम्पादन करे। उसमें पूर्वभाग कर्मकाण्डप्रतिपादित कर्म (वाजपेयादियाग) अनित्यसातिशयस्वर्गादिफलजनक तथा ब्रह्मज्ञान नित्य-निरतिशयानन्तफलजनक है ऐसा आपाततः समझ कर तादृशनित्यमोक्षरूपफल की प्राप्तिकामना से ब्रह्मजिज्ञासा में प्रवृत्त हो जाय। कर्म अनित्यफलक है, तथा ब्रह्मज्ञान नित्यफलक है, इसको श्रुति खुद ही कहती है जो अग्निहोत्रादि कर्म अदृढमूलवाला तथा चलायमान है, इसी कर्म को जो कर्मजड़ मीमांसक परमश्रेयस का साधन मानते हैं, वे लोग इस संसार में बारंबार जननजरामृत्यु

पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि-तब तो विद्या से भिन्न सकल जगत् है, तो सकल जगत् अविद्या हो जायगा इसलिये नञर्थ का निर्वचन नहीं होने से अविद्या की सिद्धि नहीं होगी। और भी यह विद्या जन्य है वा अजन्य, (नित्य) ! यदि जन्य मानो तो उस अविद्या की जनिका यही अविद्या है, वा दूसरी ? यदि अविद्या है तो आत्माश्रय दोष है, यतः स्व से स्व की उत्पत्ति नहीं होती। घट से घट उत्पन्न नहीं होता है। और एक ही में कारणत्व कार्यत्व इन विरुद्ध धर्मों का समावेश नहीं हो सकता है। यदि कहो कि ब्रह्म कारण है अविद्या का. तो सो ठीक नहीं है, क्योंकि--सोपाधिक ब्रह्म कारण है, वा निरुपाधिक! यदि सोपधिक ब्रह्म कारण हो तो अविद्या से पूर्व ब्रह्म निरुपाधि ही रहता, अविद्या से ही सोपाधिक ब्रह्म होता है, वह निरुपाधि ब्रह्म किसी का कारण नहीं है, यदि निरुपाधिक को भी कारण माने तो संसार का कारण अज्ञान ब्रह्म में सदा रहेगा, तो

आपाततः सर्वोऽप्यात्मास्तित्वं जानाति, परन्तु विशेषतो न जानाति जीवात्मतत्त्वम् । देहमात्रमात्मेति केचनावगच्छन्ति, अन्ये इन्द्रियाण्येवात्मेति, मन इत्यन्ये, विज्ञानमिति चापरे, शून्यमिति माध्यमिकाः । कर्ता भोक्तेत्यन्ये, भोक्तैव केवलं न कर्तेत्यपि केचन, इत्येवं

प्राप्त करते हैं, जैसे इस लोक में कृष्यादिकर्म के द्वारा सञ्चितधनधान्यादि पदार्थ उपभोग द्वारा कालक्रम से विनष्ट हो जाता है, वैसे अग्निहोत्रादिकेवल यज्ञ द्वारा जायमान पुण्य के बल से उपार्जित स्वर्गादिफल भी परलोक में उपभोग द्वारा कालक्रम से विनष्ट हो जाता है । एवं गीतानन्दभाष्यमें कहाकि वे कर्म करने वाले व्यक्ति पुण्यफल प्राप्त विशाल स्वर्ग का भोग कर पुण्य के क्षय होने पर वहां से इस मर्त्यलोक में आजाते हैं । (गी. ९।२१)

(यद्यपि " अपाम सोमममृता अभूम " हमलोगों ने सोमयाग में सोम रसपान किया इससे हम अमरणधर्मा हो गये हैं । " अक्षय्यं ह चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति " चातुर्मास्ययाग करने वाले को अक्षय पुण्य मिलता है " इत्यादिश्रुतिस्मृतियों से सिद्ध होता है कि—स्वर्गफल नित्य है, तथा "यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं स्वःपदास्पदम् " जो दुःख से संमिलित नहीं है, जिसका अन्तभाग अभावग्रस्त नहीं है जो इच्छामात्र से प्राप्त होता है तादृश सुखविशेष को स्वर्ग कहते हैं । यदि

संसार सर्वदा चलता ही रहेगा इस प्रकार से तो मोक्ष का अभाव हो जायगा । यदि कदाचित् अज्ञान नित्य है, इस द्वितीय पक्ष को माने तो अनादि जो भाव पदार्थ है, उसका अभाव तो होगा ही नहीं होने से अज्ञान की निवृत्ति के लिये जो गुरुतम शास्त्र का उपदेश है सो सब निरर्थक हो जायगा । 'अविद्या न निवर्तते, अनादिभावपदार्थत्वात्, आत्मवत् । अविद्या निवृत्त नहीं होती है, अनादिभावपदार्थ होने से जो अनादि भावपदार्थ होता है, सो निवृत्त नहीं होता है, जैसे आत्मा, आत्मा अनादि भाव है सो कभी नष्ट नहीं होता है । ऐसे अविद्या भी अनादि भाव होने से नष्ट नहीं होगी । इस अनुमान से अविद्या की निवृत्ति नहीं होने से गुरुशास्त्रादि का उपदेश सर्वथा व्यर्थ हो जायगा, अतः प्रकृतमत ठीक नहीं है । नवा इस मत का विषय प्रकृतमीमांसाशास्त्र है । किन्तु समस्त श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादि

कुवादिभिः कुतर्कानुमितमिवात्मतत्त्वमिति भवति संशयविषय इति संदिग्धत्वादात्मतत्त्वस्य तदर्थस्वरूपपरिमार्जनाय शास्त्रारम्भ आवश्यक एवेति संक्षेपः । इति जगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्य-रामप्रपन्नाचार्य योगीन्द्रकृतस्य श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरणस्य प्रथमं जिज्ञासाधिकारणम् ।

यह स्वर्ग अनित्य हो तो अमृतत्वकथन अयुक्त हो जायगा' इत्यादि श्रुतिस्मृत्यादि प्रमाण से स्वर्गादिफल को नित्यत्व सिद्ध होने से कर्म को अनित्यफलक कहना सर्वथा साहसमात्र है । तथापि अनेकश्रुतिस्मृतियोसे तथा युक्त्यनुभवादि प्रमाणसे सिद्ध होता है कि—कर्मका फल अनित्य है । अन्यथा ज्ञानभक्तिप्रतिपादक उत्तरमीमांसा सर्वथा विफल हो जायगी । विशेषता इतनी है कि केवल कर्म बन्धनजनक होने से त्याज्य है, परन्तु वही कर्म यदि ज्ञानसहकृत होता है तो नित्यानन्तफलमें भी कारण होता है) एवं ब्रह्मज्ञानसे मोक्ष होता है, इस बात को कहती है । "तमेव विदित्वा" उस परमात्मा भगवान् श्रीराम को जान कर उपासक मोक्ष पाता है ब्रह्मज्ञानवान् पुरुष मोक्ष पाता है इत्यादि श्रुति और स्मृति अनेक है जो आत्मज्ञान से मोक्ष का प्रतिपादन करती है, अतः ब्रह्मविचार शास्त्र का आरम्भ करना चाहिये । इति सारबोधिन्यां जिज्ञासाऽधिकणम् ॥

के समन्वयबल से अनादिवैदिक जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायन प्रवर्तित प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-प्रवर्धितविशिष्टाद्वैत मत ही मीमांसाशास्त्र का विषय है । तथा हि चित् तथा जडपदार्थ परमेश्वर का शरीर होने से अपृथक् सिद्धरूप से विशेषण है, और जड़चेतन विशिष्ट भगवान् साकेताधिपतिशरीर होने से प्रकारी है । इस मत के पोषक अनेक श्रुति है, प्रेरयिता परमात्मा को स्वभिन्न जानकर पतदर्थ "परा पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा तथा "ज्ञाज्ञावजावीशानीशौ' जीव और ईश्वर ये दोनो अजायमान तथा ज्ञानवान् और अज्ञानवान् हैं । तथा भोक्ता भोग्य एवं प्रेरयिता को जानकर इत्यादि । "क्षरंप्रधानममृताक्षरं हरः" इत्यादि अनेकश्रुति प्रमाण हैं । इसी अभिप्राय को स्मृत्यादिकने भी प्रतिपादन किया है । एवं सूत्रकार भी "ईक्षतेर्नाशब्दम्" तदनन्यत्वम्' प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा" इत्यादि अनेक सूत्रों में पृथक्त्व प्रतिपादन करते है। इस अभिप्राय को लेकर वृत्तिकारने लिखा—कि इतिजिज्ञासाऽधिकरणम् इसलेखस्वरससे इस पूर्वोक्त अभिप्राय को स्पष्ट किया है ॥

अथ जन्माद्यधिकरणम्

जन्माद्यस्य यतः ।१।१।२॥

पूर्वसूत्रे जिज्ञास्यं ब्रह्मेत्युक्तं तच्च ब्रह्म किंलक्षणकमित्याकाङ्क्षाया-मभिधीयते- 'जन्माद्यस्य यतः'' इति । अत्रायं संशयः- "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविसन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म (तै.३।१।१)" इति श्रुतिर्लक्षणविधया ब्रह्म प्रतिपादयति नवेति । श्रुत्यभिहित-जगज्जन्माद्यनेकधर्माणां स्वाश्रयभेदकत्व-नियमाद् विशेषणतयोपलक्षणतया वैकं ब्रह्म नाभिदधातीति पूर्वपक्षः । सिद्धान्तस्तु जगज्जन्मादीनामुपलक्षणतया श्रुतिरियं ब्रह्मणो लक्षणं ज्ञाप-

---

वृत्तिविवरणम्— अथ यद्वस्तु लक्षणप्रमाणाभ्यां परिनिष्पन्नं भवेत्तदैव तस्य विचारो भवति । लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुनः प्रसिद्धिरिति नियमात् । लक्षणप्रयोजनं तु स्वेतरव्यावृत्तिर्व्यवहारो वा 'व्यावृत्तिर्व्यवहारो वा लक्षणस्य प्रयोजनमि''ति । परन्तु लक्षणं तदेव भवति यत्राव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवान्यतमदोषो नावतरति,, तत्सत्त्वे लक्षणमलक्षणमेव । यथा कश्चिद् गोर्लक्षणं नीलत्वं कुर्यात्तदा नीलभिन्ने श्वेते गवि नीलस्याभावाल्लक्ष्यैकदेशे लक्षणागमनलक्षणाऽव्याप्तिरापतेत् । शृङ्गित्वं यदि लक्षणं कुर्यात्तदा लक्ष्यभिन्नमहिष्यादौ शृङ्गित्वस्य सत्त्वेनाऽलक्ष्ये लक्षणगमनात्मिकाऽतिव्याप्तिः स्यादिति । तथैव एकशफवत्त्वं यदि लक्षणं कुर्यात्तदा लक्ष्यमात्रावर्तनलक्षणाऽसम्भव एवापतेत् । इत्यतो दोषत्रयरहितमेव लक्षणं भवति ।

सारबोधिनी—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस प्रथम सूत्र में ब्रह्म की जिज्ञासा कहकर ब्रह्मविचार करना चाहिये, इस प्रकार से ब्रह्म में जिज्ञास्यत्व का प्रतिपादन किया गया । परन्तु जिज्ञासाशब्द का अर्थ होता है— ज्ञानविषयक इच्छा, ज्ञान विषयनिरूपण का अधीन है, और विषय लक्षण—प्रमाणाधीन होता

शत्येव । बृहत्त्वधर्मसम्बन्धादुक्तश्रुतौ प्रसिद्धवद् यत इत्यादि-निर्देशाच्चास्त्येव जगज्जन्मादीनामुपलक्षणत्वम् । तथाविधप्रतिद्धानुगुणकारणत्वं तु "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् (छा.६।२।१)। तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति । तत्तेजोऽसृजत" (छा ६।२।१) इत्यादिश्रुतिसिद्धमभिन्ननिमित्तोपादानरूपम् एवमेतच्छ्रुतिगत-जगज्जन्मादीनां विशेषणविधयाऽपि ब्रह्मलक्षणता सम्भवति । न च खण्डो मुण्डो गौरितिवदनेकविशेषणानां धर्मिभेदकत्वमिति वाच्यम् । परस्परविरुद्धानां तेषां तथात्वेऽप्यविरुद्धानां 'दण्डी, कुण्डली देवदत्त" इत्यादीनां नाश्रयभेदापादकत्वम् । प्रकृते तु कालभेदेन जन्मस्थितिलयानां विशेषणत्वं सम्यगुपपद्यते । इति श्रीरघुवरीयवृत्तौ जन्माद्यधिकरणम् ॥

अथैतद्दोषसत्त्वे का क्षतिरिति चेच्छृणु– लक्षणं लक्ष्यस्य व्यावर्तकं भवति, तत्रेतरभेदानुमानेऽव्याप्तं लक्षणं हेतूक्रियते चेत्तदा 'गौः स्वेतरेभ्यो भिद्यते नीलरूपादितीतरभेदानुमाने नीलस्य हेतोः पक्षैकदेशे श्वेते गव्यभावेन पक्षैकदेशे हेतोरभावलक्षणभागाऽसिद्धिर्भवेत् 'वायुघटौ रूपवन्तौ रूपादितिवत् । अतिव्याप्तलक्षणस्य हेतुत्वे साध्याभाववति हेतोः सत्त्वेन वह्निमान् प्रमेयत्वादितिवद् व्यभिचारः स्यात् । असम्भवग्रस्तस्य लक्षणस्य हेतुत्वे पक्षे हेतोरभावेन शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वादितिवत् स्वरूपा-

है, तो ज्ञानविषयीभूत जो ब्रह्म, उसका लक्षण क्या है? क्योंकि पदार्थों का निरूपण अर्थात् व्यवस्था लक्षण– प्रमाणाधीन है, और लक्षण उसका नाम है, जो लक्ष्य का असाधारण धर्म होकर लक्ष्य को स्वेतर से भिन्न करता हो, जैसे पृथिवी का लक्षण होता है गन्ध, यह गन्ध पृथिवी का असाधारण धर्म होकर पृथिवीरूप लक्ष्य को पृथिवीतरजलादित्रयोदश पदार्थों से भिन्न करता हैं। यद्यपि उत्पत्तिकालिकघटादिपृथिवी में गन्ध नहीं, तथा प्रलय में परमाणु में गन्ध नहीं रहता है. तथाऽपि गन्धाधिकरण में वृत्ति जो द्रव्यत्वव्याप्य पृथिवीत्वजाति, तादृशजातिमत्त्व लक्षण– गन्धवत्त्व पृथिवीमात्र में रहजाने से

सिद्धिरूपो हेत्वाभास आपतेत्। इति तदनुमानं नेतरभेदसाधनायाऽलं स्यादित्ययमेव दोषः स्यादिति। अतस्तादृशमेव लक्षणं यत्रैषु नान्यतमो दोषो भवेत्। एतादृशेन लक्षणेन प्रसिद्धस्यैव लक्षणव्यवस्थापकत्वं लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धेरिति नियमात्। प्रकृते निर्दुष्टस्य लक्षणस्याभावात् परमात्मतत्त्वाव्यवस्थितत्वात् कथमप्रसिद्धस्य ब्रह्मणो जिज्ञासा प्रतिज्ञाता प्रथमसूत्रे? इत्याद्यभिप्रायं पूर्वपक्षिणो मनसि निधायाऽऽह वृत्तिकारः- "पूर्वसूत्रे जिज्ञास्यं ब्रह्मेत्युक्त" - मित्यादि। पूर्वस्मिन् "अथातो 'ब्रह्मजिज्ञासे'- ति सूत्रे ब्रह्म जिज्ञास्यं- ब्रह्मविषयको विचारः कर्तव्यो मुमुक्षुणेति प्रतिपादितम्। तत्र ब्रह्मजिज्ञासाघटकं ब्रह्म किंलक्षणकम्? एतादृशब्रह्मणः स्वरूपं किमिति स्वभावत एव जिज्ञासा जायते यतो लक्षणमन्तरेण लक्ष्यापरिचयाद् विचार एवाशक्यः स्यादिति। एवं जिज्ञासावतां कृते ब्रह्मलक्षणमाह सूत्रकारः- "जन्माद्यस्य यतः" यस्य नामद्वयेन विभक्तस्य कर्तृभोक्तृयुक्तस्यानेकप्रकारकस्य जडचेतनात्मकस्य जन्मादि -उत्पत्तिस्थितिप्रलयैतत्त्रयम् यतः -यस्मात् सर्वज्ञात्

पृथिवी का लक्षण होता है, तो वह स्वेतरभेदक है। इसी प्रकारसे प्रकृत में ब्रह्म का क्या लक्षण है? जिस लक्षण से लक्षित ब्रह्म में जिज्ञास्यत्व होगा। इस अभिप्राय से ब्रह्म का लक्षण करने के लिये वृत्तिकार उपक्रम करते हैं- "पूर्वसूत्र" - इत्यादि। पूर्वसूत्र में अर्थात् "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र में ब्रह्म जिज्ञासा का विषय है, ऐसा कहा है, तो इस ब्रह्म का क्या लक्षण है, अर्थात् ब्रह्मनामक पदार्थ किसी लक्षण के द्वारा व्यवस्थित हो जायगा तब उसकी जिज्ञासा होगी। इस प्रकार से शिष्य की जिज्ञासा होने से इस जिज्ञासा के उत्तर में भगवान् सूत्रकार वेदव्यास कहते हैं- "जन्माद्यस्य यतः" नाम और रूप के द्वारा व्याकृत अनेक प्रकारक जड़चेतनात्मक जो कि- अनेकप्रकारककर्ता और भोक्ताओं से युत स्वर्गनरकादिशाखोपशाखा से परिवृत है, एतादृश परिदृश्यमान जगत् का जिस सर्वज्ञ सर्वशक्ति से युक्त

सर्वशक्तेरनेककल्याणगुणवतः साकेताधिपतेः सकाशाज्जायते तद् ब्रह्मेति मुकुलितोऽर्थः विस्तृतार्थस्तु श्रीसम्प्रदायाचार्ययतिराजश्रीरामानन्दाचार्यप्रसादितानन्दभाष्याम्बुधौ द्रष्टव्यः ॥ यद्यपि जन्मादिकं न ब्रह्मलक्षणं सम्भवति यतो जन्मादेर्ब्रह्मण्यवृत्तित्वात् पक्षे वर्तमान एव हेतुर्गमको भवति यथा पर्वते वर्तमानः साध्यनिरूपितव्याप्तिमान् धूमो ज्ञापयति पर्वते वह्निम् । प्रकृते हेतुस्तु संसारनिष्ठत्वेन व्यधिकरणः, नहि अन्यगतो हेतुरन्यस्मिन् साध्यं साधयति । अपि तु तद्धर्मस्तदात्मक एव साधकः । तथापि ब्रह्मधर्मत्वेन ब्रह्मतादात्म्येन जन्मादिकं न ज्ञापयतु परमात्मानम् । किन्तूत्पत्त्याऽनुज्ञापयत्येव । यथा वह्निजन्यो धूमो वह्निं व्याप्तिपक्षधर्मतात्वात् पर्वते बोधयति तथा परमात्मजन्यं जगद् व्याप्तिपक्षधर्मताबलात् स्वजनकं परमात्मानं गमयिष्यत्येव जगन्निष्ठकार्यतानिरूपितकारणतावत्त्वेन । ब्रह्म जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानमिति वक्ष्यति । अत्रायं संशय इति वृत्तिग्रन्थः अत्र– ब्रह्मल-

समस्त कल्याणगुणों का आकार सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पुरुषविशेष से उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होते हैं, अर्थात् जो भगवान् रजोगुणाश्रितशक्तियुक्त होकर इस समस्त प्रपञ्च को उत्पन्न करते हैं तथा सत्वगुणविशिष्ट–शक्तिद्वारा जड़चेतन जगत् का पालन करते हैं, और तमोगुण–विशिष्ट–शक्ति द्वारा प्रलयकाल में सर्वजगत् को अपने में लीन करते है । “ यतो वा इमानि भूतानि ” इत्याद्यनेकश्रुति, एवम् “ यस्य ब्रह्म च सत्रं च उभे भवत ओदनः ” शेतेऽनन्तासने नित्यमात्मसात्कृत्य चाखिलम् ” (जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है, जिसका ब्राह्मणक्षत्रियोपलक्षित सकलचेतनाचेतनात्मक जगत् ओदनस्थानीय है, और मृत्यु स्वयं उपसेचन शाकसूपस्थानीय है एतादृश महान् पुरुष को कौन जान सकता है ? जो प्रलयकाल में अखिलजगत् को आत्मसात् कर अनन्तासन पर सो जाता है) इत्यादिश्रुतिस्मृति प्रमाण है । परमेश्वर के जगत् के उत्पत्त्यादिक में कारण होने में । यही जगदुत्पत्त्यादिक ब्रह्म का लक्षण है । लक्षण का प्रयोजन

क्षविषय इत्यर्थः। विरुद्धानेकभावाभावकोटिक एकधर्मिकः संशयः। स च क्वचित् साधारणधर्मदर्शनेन कचिदसाधारणधर्मदर्शनजन्यः कचिद् विप्रतिपत्तिजन्यः। "यतो वा इमानि, तद् ब्रह्म"(तै. ३।१।१) यस्मात् परमेश्वरात् सर्वशक्तिकात् इमानि–अनुभूयमानानि भूतानि–आकाशादिपृथिव्यन्तानि भूतपदवाच्यानि जायन्ते–समुत्पद्यन्ते, तथा येन ब्रह्मणा तानीमानि भूतानि,जीवन्ति–जीवधारणं कुर्वन्ति-स्थितिमन्ति भवन्ति, तथा प्रतिसर्ग(प्रलय) समये यस्मिन् ब्रह्मणि प्रलीयन्ते तदेव ब्रह्म, तादृशब्रह्मण एव जिज्ञासा कर्तव्येत्यर्थ उक्तश्रुतेः। सेयं जगतो जन्मादिबोधिका श्रुतिर्लक्षणवाक्यविषया जगत्कारणं परमात्मानं प्रतिपादयति–बोधयति। अथवा तादृशपरमात्मानं न बोधयति ? इत्याकारकः संशयो जायते। तत्र लक्षणं लक्ष्यते ज्ञाप्यत उद्देश्यो येन तल्लक्षणं व्यवहारव्यावृत्तिप्रयो-

होता है इतरभेदानुमिति। यह लक्षण दो प्रकार का होता है इसका विचार आगे किया जायगा। " अत्रायं संशय " इति वृत्तिः। इसके विषय में यह लक्ष्यमाण सन्देह होता है। " यतो वै– " त्यादि। जिस परब्रह्मपरमात्मा से ये सब स्थावराकाशादिसकलभूत जायमान होते हैं एवं उस परमात्मा से उत्पन्न होकर स्थित रहते हैं और प्रलय के समय में उसी परमात्मा में लीन होते हैं इस उत्पत्त्यादिनियामक महापुरुष की जिज्ञासा करो वही ब्रह्म है अर्थात् यह जो अनेक प्रकार का जगत् है जिसका निर्माता परमेश्वरेतर से मनसे भी आलोचनीय नहीं है एतादृशजगत् को उत्पादकता भगवान् को छोड़कर अन्यव्यक्ति में असम्भव है यह जो उपर्युक्त श्रुति है वह लक्षणरूप से ब्रह्म की बोधिका है अथवा प्रतिपादिका नहीं है ऐसा संशय होता है "अत्यभिहित" इत्यादि। लक्षण का भेद लक्ष्यभेद का नियामक है जैसे गन्धवत्त्व शीतस्पर्शवत्त्व आदिलक्षण पृथिवी तथा जल को भिन्न बनाते हैं यह पहले कहा गया है, तो प्रकृत में जगज्जन्मादिक अनेक लक्षण हैं अर्थात् तीन लक्षण का भेद स्वाश्रयलक्ष्य को भिन्न कर देता है ऐसा नियम है तथा यह लक्षणत्रय विशेषणरूप से वा

जनकम्। तल्लक्षणं द्विविधम्। तटस्थस्वरूपभेदात्। तत्र यो धर्मो यावल्लक्ष्यकालमवस्थितो लक्ष्यं स्वेतरस्माद्विभेदयति यथा गन्धवत्त्वं पृथिव्या लक्षणम्। स च गन्ध उत्पत्तिकाले प्रलयकाले च पृथिव्यां न भवति, यतो निर्गुणं निष्क्रियं च द्रव्यमुत्पद्यते उत्पन्नं द्रव्यं क्षणमगुणं निष्क्रियं च भवतीति नियमात् घटादीनामुत्पत्त्यनन्तरं पाकादिबलेन गुण उद्भवति। यदि समकालं घटतद्गतगुणयोर्युगपदुत्पत्तिं स्वीकुर्यात्, तदा समकालिकयोर्जन्यजनकभावो न स्यात्। कारणं त्वव्यवहितप्राक्कालवृत्ति भवति, कार्यन्तु पश्चात्कालवृत्ति भवतीति नियमात् तयोः कार्यकारणभाव एव न स्यात्। न हि भवति यमलजातयोः परस्परं जन्यजनकभावः। तत्कथं तथा? समसमयत्वादागन्तुकत्वाच्चेति। एवं लक्ष्यभूतपृथिव्या

उपलक्षणरूप से एकब्रह्म का प्रतिपादक नहीं हो सकते हैं। और परमेश्वर तो जगज्जन्मादिक में कर्ता कारक है कर्ता उसे कहते हैं जो स्रष्टव्य वस्तु के उपादान कारण का अपरोक्षज्ञानवान् तथा चिकीर्षावान् और कृतिमान् हो तो अपरोक्षज्ञानवत्त्व चिकीर्षावत्त्व और कृतिमत्त्व ये तीन लक्षण हुए तो इस प्रकार से उत्पत्ति के विषय में तीन लक्षण स्थिति के विषय में तीन लक्षण,, और प्रलयमूलक तीन लक्षण हुए, ये नौ लक्षण नौ आश्रयों को सिद्ध करेगें। तब जगदुत्पत्त्यादि लक्षणों से एक परमेश्वर की सिद्धि नहीं होती है, अतः " यतो वा इमानि " इत्यादिश्रुति ब्रह्मलक्षण प्रतिपादन करने में तात्पर्य नहीं रखती है,। यह पूर्वपक्ष का अभिप्राय है

"सिद्धान्तस्तु" इत्यादि वृत्तिः। एतादृश पूर्वपक्ष के उत्तर में सिद्धान्ती उत्तर देते हैं– स्थावरजङ्गमात्मक जगत् का जो उत्पत्तिस्थितिप्रलयादिक हैं, उन सबको उपलक्षणरूप से " यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते " इत्यादिश्रुति ब्रह्मलक्षण की ज्ञापिका है। क्योंकि व्यापकत्वलक्षण धर्म का सम्बन्ध है, तथा इस श्रुति में प्रसिद्ध के समान " यतः " इस पञ्चमीविभक्ति के निर्देश से जगज्जन्मस्थितिप्रलय ये सब ब्रह्म के उपलक्षण होते हैं इस प्रसिद्धि में अनुकूल

यावान् कालस्तावत्कालं नावतिष्ठते गन्धोऽभवन् न पृथिवी स्वेनरेभ्यो भिद्यते गन्धादिति क्रमेण लक्ष्यं लक्ष्यभिन्नाद् भेदकृद् भवति तटस्थलक्षणं पृथिव्या गन्धः। अपरं तु स्वरूपलक्षणम्, तत् स्वरूपात्मकमेव लक्ष्यस्य। प्रकृते जगज्जन्मादिकं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणम्, सत्यज्ञानादिकं तु स्वरूपात्मकमेव लक्षणम्। एतादृशलक्षणरूपेण श्रुतिर्बोधयति परमात्मनो लक्षणम्

यस्माद् "यतो वा इमानि भूतानि" (तै. ३।१।१) इत्यादिश्रुतिर्लक्षणत्रयं प्रतिपादयति। तत्रैकं लक्षणं जगदुत्पादकतारूपम्, अपरं जगत्स्थापकतारूपम् तृतीयं लक्षणं जगन्नाशकत्वरूपम्। एवं च लक्षणत्रयेण नैकं ब्रह्म सिध्येत् यथा घटपटयोर्लक्षणं विभिन्नं भवत् स्वकीयं लक्ष्यं परस्परं विभिनत्ति। एवं प्रकृते ब्रह्माभित्तिप्रकारकं स्यात्, तथा कर्तृत्वं नाम उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वलक्षणमेव। ततश्च अपरोक्षज्ञान-

कारण यह जगत् जड़चेतनलक्षण जो परिदृश्यमान है, वह उत्पत्ति के पूर्व में एक तथा सजातीयद्वितीयरहित सत् व्यापक परब्रह्म के अभेदरूप से ही व्यवस्थित था। वह प्रकृत परमात्मा ने ईक्षण संकल्प अर्थात् विचार किया कि– एक ही मैं अनेकरूप से उत्पन्न होऊंगा" इस प्रकार से प्रकृत वह परमात्मा ने आकाश और वायु को उत्पन्न कर तेज जल पृथिवी ओषधिवनस्पत्यादि अनेकप्रकारक विलक्षण जगत्प्रपञ्च रचा," इत्यादि अनेकश्रुतियों से सिद्ध अभिन्ननिमित्तोपादानरूप ही है, जैसे ऊर्णनाभिनामक कीट जो कि सूत बनाता है, वह जन्यतन्तु के प्रति स्वयमेव उपादान कारण है, तथा निमित्तकारण, अर्थात कर्ता भी होता है, न तु घटादिक कार्य में जैसे उपादानकारण सजातीय मृत्तिका होती है, तथा कर्तृ कारण कुलाल होता है उस तरह प्रकृत जगत के प्रति निमित्त कारण अलग कोई हो, और उपादान कारण भिन्न कोई हो, ऐसा नहीं है, किन्तु यही सर्वशक्तिमान् परमात्मा जगत् का उपादान कारण भी होते हैं, तथा अपरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमद्रूप कर्ता भिन्न नहीं होते हैं। अतः इसमें अभिन्ननिमित्तोपादानता है। एतादृश अभिन्ननिमित्तोपादानता ही

वत्त्वमेकं लक्षणम्, चिकीर्षावत्वं द्वितीयम् कृतिमत्त्वं तृतीयं लक्षणमिति मिलित्वा लक्षणत्रयं जातम्। तथा जगत्स्थितिविषयेऽपि ज्ञानचिकीर्षा कृतिघटितं लक्षणम्। एवं नाशेऽपि ज्ञानचिकीर्षाकृतिघटितं लक्षणत्रयमिति सर्वसंकलनया नव लक्षणानि भवन्ति। तानि च सर्वाणि लक्षणानि स्वंस्वं लक्ष्यभूतं परमात्मानं भेत्स्यन्ति। इति नैकस्य परमात्मनः प्रतिपादनं करोति यतो वा इमानि भूतानी"–ति श्रुतिः। किञ्च सर्ववेदान्तेषु निर्विशेषं ब्रह्मैव प्रतिपादितं भवति, न तु सविशेषम्। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद् भूतयोनिं पश्यन्ति धीरा" इत्यादिश्रुतिशतप्रतिपाद्यं निर्विशेषं ब्रह्मैवेति तादृशब्रह्मणो जिज्ञास्यमानं लक्षणं किं भविष्यति? यतो लक्षणं विशेषात्मकः कश्चिद् धर्म एव निर्विशेषे च कस्यचिदपि धर्मस्य पर्यवस्थानं सर्वथा प्रमाणविरुद्धमिति न "यतो वा इमानी"—

अनुगुण कारण है। ऐसा होने से इस श्रुति में जो जगज्जन्मस्थितिप्रलय है, वह विशेषणरूप से भी ब्रह्म का लक्षण बन सकता है,। प्रश्न– जन्मस्थिति और प्रलय ये तो परस्पर अनेक लक्षण हुए, तो अपने अपने आश्रय को जरूर ही भिन्न करेगें जैसे गन्ध तथा शीतस्पर्श भिन्नाश्रय के उपस्थापक होते हैं, वैसे ज्ञेयब्रह्म में भी अनेकता हो जायगी, न तु ब्रह्म में एकता होगी। यथा वा खण्डो गौः, मुण्डो गौः" इत्यादिस्थल में अनेक विशेषण अपने अपने आश्रय को भिन्न करते हैं, वैसे प्रकृत में भी होगा। तब तो "वरघाताय कन्योद्वाहनम्' इसन्याय का अतिक्रमण नहीं होता है, अर्थात् "यदर्थमयमारम्भस्तत्सर्वमवसादितम्" जिसके लिये यह आरम्भ किया गया, उससे तो मूल का ही विनाश हो गया यह जो लौकिक वृत्तान्त है उसका अतिक्रमण नहीं होता है इस प्रश्न के उत्तर में वृत्तिकार कहते हैं कि–'परस्परविरुद्धानामित्यादि'। यह ठीक है कि– लक्षण का भेद लक्ष्यभेद का नियामक होता है जिस स्थल में उनलक्षणों में विरोध रहता है, जैसे– गन्ध तथा शीतस्पर्श। जिस पृथिवी अधि-

त्यादिश्रुतयो ब्रह्म प्रतिपादयितुं समर्था इति पूर्वपक्षसंक्षेपः ॥

सिद्धान्तपक्षस्तु जगज्जन्मस्थितिनाशाः अलक्षणरूपेण ब्रह्मणो लक्षणानि भवन्ति। यद्यपि जगज्जन्मादिकमिति प्रतिपादयति "यतो वा इमानि भूतानी"–त्यादिश्रुतिः, यद् बृहत् तद् ब्रह्म। अथवा यो हि भूतानां परिणमयिता स एव परमात्मेति बृहत्त्वधर्मसम्बन्धमादाय तथा "यत" इति निर्देशाच्च भवत्येव जगज्जन्मादीनां ब्रह्मण उपलक्षणत्वम्। ब्रह्मणो बृहत्त्वधर्मसम्बन्धे कारणं तु श्रुतिसूत्रसिद्धमभिन्नोपादानत्वलक्षणमेव। तथा च "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्"।(छा.६।२।१।३) इदं-परिदृश्यमानं जडचेतनात्मकं वस्तु उत्पत्तेः पूर्वावस्थायामेकाद्वितीयब्रह्मात्मकमेवासीदित्यर्थः) 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति (तत् सदात्मकं चेतनमहमेकमपि विविधजडचेतनरूपेण भवेयमिति पर्यालोचनमकरोदित्यर्थः) "तत् तेजोऽसृजत"(छा.६।२।१।३)(तत्–प्रकृतं चेतनमाकाशवायू समु-

करण में गन्ध रहता है उसमें शीतस्पर्श नहीं रहता है और जिस जल में शीतस्पर्श है, उसमें गन्ध नहीं रहता है तो सहानवस्थानलक्षण विरोध होने से परस्पर विरुद्ध गन्ध शीतस्पर्श अपने अधिकरण के भेद को सिद्ध करे परन्तु जहां सहानवस्थानलक्षण विरोध नहीं है किन्तु सामानाधिकरण्य होने से अविरोध है यथा– छत्री कुण्डली वासस्वो देवदत्तः" यहां विशेषण छत्रादि को स्वाश्रयभेदकत्व नहीं होता है अपि तु अभेदक, संवादकत्व दोष देखने में आता हैं ऐसे प्रकृत में जन्मादिक जो हैं वे परस्पर विरोधी नहीं है अपितु अविरुद्ध समानाधिकरण हैं तो आश्रय ब्रह्म के भेदक नहीं हो सकते हैं अपितु लक्ष्यब्रह्म की एकता का ही संपादक है, यद्यपि प्रकृत में भी तो कालिक विरोध है ही, क्योंकि– जिस काल में ब्रह्म में जगज्जन्मोत्पादकता है, उस काल में प्रलयकर्तृता तो नहीं है, तथापि कालभेद को लेकर इसका समाधान किया जाता है, जसे घट में पाकजरक्तरूप है, पाकसे पूर्वकाल मे श्यामरूप है, इन दोनों में कालभेदकृत भेद होने पर भी परस्पर विरोध नहीं

त्पाद्य तेजोलक्षणं वस्तु समुत्पादयामासेत्यर्थः) इत्याद्यनेकश्रुतिभिर्ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वं प्रतिपाद्यते। तस्मात् सम्भवत्येव स्थावरजङ्गमजगतः कारणता ब्रह्मणः। श्रीमदानन्दभाष्यकारेणापि तथैवानुमोदितं प्रकृतश्रुतिव्याख्याने तथाहि—"इदं परिदृश्यमानं विभक्तनामरूपमनेकावस्थं घटपटादिजगदग्रे सृष्टिकालात्पूर्वमेकमेवाविभक्तनामरूपतया एकत्वावस्थापन्नमेव अद्वितीयं कर्तृत्वान्यकारकत्वरहितं सदेव सदाकारकप्रतीतिविषयतापन्नमेवासी" दिति (आनन्दभाष्य ६।२।१।) तथा "तत्सच्छब्दवाच्यं परं ब्रह्म ऐक्षत ईक्षणं सङ्कल्पं कृतवान् एकोऽप्यहं बहुविचित्रानन्तजडचेतनमिलितव्यष्टिजगद्रूपेण बहु अनेकरूपः स्यां प्रजायेय प्रकर्षेण जायेय" इति च। (छा.६।२।३) यदिदं श्रुतिप्रतिपादितं जगज्जन्मादिकं तद् विशेषणरूपेणापि ब्रह्मणो लक्षणं भवत्येव।

न च जगज्जन्मादिकानि यानि त्रीणि नव वा लक्षणानि तानि तु स्वस्वस्वरूपं लक्ष्यमेव भेत्स्यन्ति लक्ष्यभेदस्य लक्षणभेदनियमात् खण्डो

है, तथा आधारभेदप्रयोजकता है, वैसे प्रकृत में भी समझना चाहिये। यदि कालिक अव्याप्यवृत्ति इन लक्षणों को माने तो भेदलक्षण लक्ष्यतावच्छेदक के व्यापकता वने नहीं तव तो इतरभेदानुमान में भागासिद्धि होगी, लक्ष्यतावच्छेदकव्यापक ही लक्षण होता है ऐसा नियम है। अतः यहां वा अन्यत्र भी जातिघटितलक्षण किया जाता है, वा स्वरूप लक्षण से निर्वाह किया जाता है जैसे उत्पत्तिकालिक घट में तथा प्रलयकालिक परमाणु में गन्ध नहीं रहने से गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यपृथिवीत्वजातिमत्त्व लक्षण किया जाता है, वा स्वरूपलक्षण का शरण लिया जाता है। प्रकृत में सत्यज्ञानानवधिकानन्तकल्याणत्व ही परमात्मा का स्वरूप लक्षण होता है, लक्षण दो प्रकार का होता है एक तो तटस्थलक्षण दूसरा स्वरूपलक्षण। उनमें जो यावत्कालपर्यन्त लक्ष्य की सत्ता रहे तबतक स्थित न होकर लक्ष्य को इतर से भिन्न करे वह तटस्थ लक्षण है जैसे पृथिवी का गन्ध तटस्थलक्षण है क्योंकि जबतक पृथिवी का अवस्थान

गौर्मुण्डो गौ- रित्यादौ तथा दर्शनात्। एवं च प्रकृतेऽपि लक्षणभेदेन लक्ष्यभेदसिद्धौ नैकं वेदप्रतिपाद्यमनन्तगुणाकरं सविशेषं ब्रह्म सिध्येदिति वाच्यम् । भावानवबोधात् सत्यं लक्षणभेदो लक्ष्यभेदप्रयोजको यथा शीतस्पर्शवत्त्वं गन्धवत्त्वं च स्वाश्रयं परस्परं भिनत्त्येव किन्तु यानि परस्परविरुद्धानि लक्षणानि तान्येव लक्ष्यभेदकानि भवन्ति न तु परस्परमविरुद्धानि तानि लक्ष्यभेदसमर्पकाणि यथा-"पीताम्बरः शङ्खचक्रगदाधरो मुकुन्दः" अत्र यानि पीताम्बरादिविशेषणानि, न तानि मुकुन्दविशेष्यं भिन्दन्ति तद्वत् प्रकृते जगज्जन्मादिकानि स्वरूपतो विभिन्नानि न लक्ष्यस्य भेदकानीति प्रकृते कालभेदेन सर्वसम्भवादिति । यद्यपि श्रुत्या पूर्वपक्षे निर्विशेषं ब्रह्मेति कथितं तदप्यनेकश्रुतिस्मृत्यनुभवविरोधादुपेक्ष्यमेव । किन्तु सकलहेयप्रत्यनीकानन्तकल्याणगुणाकरो भगवान् सीतापतिरेव वेदान्तवेद्यः सविशेषो लक्षणीयो जिज्ञास्यश्चेति परवादिमतखण्डनम-

रहता है तबतक गन्ध नहीं रहता है और पृथिवी को पृथिवीतर से भिन्न करता है ऐसे प्रकृत में जबतक ब्रह्म का काल है तबतक ब्रह्म में जगत्कर्तृत्वादि धर्म नहीं रहता है और परमात्मा स्वेतर से भिन्न है जगत्कर्ता होने से इस प्रकार से भेदक होता है जगत्कर्तृत्वादिधर्म । अतः यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है । और स्वरूपलक्षण वह है जो लक्ष्य का स्वरूपात्मकही हो । जैसे प्रकृत में ब्रह्म का लक्षण होता है- अप्राकृतिकनिरतिशयानवधिकानन्तकल्याणगुण । यह लक्षण परमात्मा का यावत्कालावस्थ भी होता है तथा जड़चेतनादि से व्यावर्तक भी होता है इत्यादि अभिप्राय को लेकर वृत्तिकार ने जो कहा है "**कालभेदेन तु जन्मस्थितिलयानां लक्षणत्वं सम्यगुपपद्यते**" यह ठीक ही कहा है । इस प्रकार से लक्षण के सम्पन्न होने से एतादृशलक्षणद्वारा सम्पन्न ब्रह्म जो कि शास्त्रानुमोदित सविशेष श्रीरामात्मक हैं, तादृशब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिये, यह सिद्ध हुआ । अतः इस ब्रह्मविचारशास्त्र का आरम्भ अवश्य करना

प्रकृतत्वादुपेक्षितमिति संक्षेपः । इति जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य-रामप्रपन्नाचार्य-योगोन्द्र-कृत-श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरणे जन्माद्यधिकरणम् इति द्वितीयसूत्रम् ॥

अथ शास्त्रयोनित्वाद्यधिकरणमारभ्यते—

शास्त्रयोनित्वात् ११११३॥

अत्र जगज्जन्मादिकारणत्वेन सिद्धस्य ब्रह्मणः प्रमाणान्तरवेद्यतोत वेदान्तैकवेद्यतेति संशयः। तत्र शास्त्रस्य प्रमाणान्तरानधिगतार्थज्ञापकत्वान्न ब्रह्मणि शास्त्रं प्रमाणमपि त्वनुमानमेवेति पूर्वः पक्षः। अत्रोच्यते—

अथ लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुनः सिद्धिर्भवतीति नियमात् इदः पूर्वस्मिन्नधिकरणेऽवस्थां प्रसाध्य तादृशब्रह्मणः सिद्धिः प्रतिपादिता, तदनन्तरं प्रमाणद्वारा ब्रह्मणः सिद्ध्यर्थं प्रकरणमिदमारभ्यते । तत्र ब्रह्मणि प्रत्यक्षं प्रमाणम्, अनुमानं वोपमानं वाऽऽगमः प्रमाणम् ? तत्र न तावत् प्रत्यक्षं प्रवर्तते, तथाहि– प्रत्यक्षं द्विविधम् बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र बाह्य-

चाहिये, यह भी सिद्ध होता है, इस विषय पर विशेष विचार भाष्यादि आकर ग्रन्थ से ही करना ।

इति श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरणस्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीतायां सारबोधिन्यां जन्माद्यधिकरणम् ॥२॥

सारबोधिनी–लक्षण तथा प्रमाण से पदार्थों की सिद्धि होती है," ऐसा नियम है, जैसे – गन्धवत्त्वादि लक्षण चक्षुरादि प्रमाण से पृथिव्यादि पदार्थों की व्यवस्था होती है। उसमें लक्षण जो होता है वह" व्यावृत्तिर्व्यवहारो वा लक्षणस्य प्रयोजनम्" लक्षण का प्रयोजन होता है लक्ष्य में लक्ष्येतर से भेद का अनुमान कराना तथा व्यवहार कराना। जैसे - पृथ्वी स्वेतर से भिन्न है। गन्धवती होने से, जिसमें पृथिवीतरभेद नहीं है, उसमें गन्ध भी नहीं रहता हैं, और लक्षण लक्ष्यतावच्छेदक का व्यापक होकर ही अनुमापक

शास्त्रयोनित्वादिति । शास्त्रं योनिः प्रमाणं यस्येति ब्रह्मणि शास्त्रमेव प्रमाणं नानुमानम् । अत एव 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' (बृ. ३।९।२६) इत्यादावुपनिषदेकगम्यत्वमुक्तम् ॥३॥

इति श्रीरघुवरीयवृत्तौ शास्त्रयोनित्वाधिकरणम् ॥

प्रत्यक्षेण रूपिस्पर्शवद्द्रव्यस्यैव रूपस्पर्शसहकृताभ्यां चक्षुस्त्वक्प्रमाणाभ्यां लौकिकसन्निकर्षसहकृतेस्ताभ्यामध्यक्षं जायते, यथा– घटादिद्रव्याणाम्, ब्रह्म तु न रूपवन्न वा स्पर्शवत्, "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि श्रुतेः । नाप्यान्तरप्रत्यक्षगम्यं ब्रह्म "यतो वाचो निवर्तन्ते" इति श्रुतेः । "मनोमात्रस्य गोचरः" इति नियमेन जीवतत्सुखदुःखादियोग्यगुणानामेव मनसा ग्राह्यत्वात्, परमात्मा तु न जीवो नापि जीवगणो येन मनसा गृहीतः स्यात् । इत्येवं क्रमेण न प्रत्यक्षप्रमाणवेद्यत्वं परमात्मनः । न वाऽनुमानप्रमाणेन तदधिगमः, अनुमानस्य प्रत्यक्षाधीनत्वात्प्रत्यक्षाभावे

होता है, अन्यथा यदि अव्याप्तिदोषदुष्ट हो तो इतरभेदानुमान में भागासिद्धि दोष हो जाता है। यदि अतिव्याप्तिदोषदुष्ट हो तो इतरभेदानुमान में व्यभिचार दोष हो जाता है । एवं यदि लक्षण में असंभव दोष हो तो इतरभेदानुमान में स्वरूपासिद्धिदोष होता है । तो एतादृश दोषत्रयरहित लक्षण लक्ष्यतावच्छेदक का व्यापक होकर अनुमापक होता है, यह नियम है । तो प्रकृत में ब्रह्म का क्या लक्षण है, इस जिज्ञासा के उत्तर में ब्रह्म का लक्षण जगज्जन्मादिकारणतारूप ही है, इस बात का निश्चय द्वितीय अधिकरणमें कर अब जगत् के जन्मस्थितिप्रलयकारणरूपसे सिद्ध जो ब्रह्म हैं, सो प्रमाणगम्य हैं, इसका निश्चय हुआ । परन्तु वह ब्रह्म किस किस प्रमाण से सिद्ध होता है ? इस बात को भी सूचित करने के लिये तृतीय अधिकरण का उत्थान होता है- "शास्त्रयोनित्वात्" १।१।३॥ शास्त्र जो ऋग्वेदादिक, वह है योनि अर्थात् प्रज्ञापक प्रमाण जिसका वह होता है शास्त्रयोनि, उसका भाव शास्त्रयोनित्व है वह ब्रह्ममें है, इस से यह सिद्ध होता है कि ऋग्वेदादिक

तदप्रसरात्। दृश्यते प्रत्यक्षयोरेव वह्निधूमयोर्महानसादौ व्याप्तिमवगम्य व्याप्तधूमेन पक्षतासहकृतेनानुमापकत्वम्, इह परमात्मनोऽप्रत्यक्षत्वात् तेन सह न कस्यचिदपि व्याप्तिग्रहो व्याप्तिग्रहाभावे नानुमानप्रसरः तदेवं नानुमानगम्यता परमात्मनः। नाप्युपमानं प्रमाणं प्रक्रमते परमेश्वरे, यत उपमानस्य सादृश्याधीनत्वात्, परमेश्वरस्य न कश्चित् सदृशः, "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इति श्रुतेः परमेश्वरसदृशवस्तुनोऽभावप्रतिपादनात्। नापि शब्दः प्रमाणम् परमेश्वरे, अन्योऽन्याश्रयात् परमेश्वरप्रणीतत्वेनाऽऽगमस्य प्रामाण्यं भवति। तथा च– परमेश्वरप्रणीतत्वेनाऽऽगमस्य प्रामाण्यसिद्धावेव तादृशागमेन परमेश्वरसिद्धिः, परमेश्वरसिद्धौ वाऽऽगमसिद्धिरिति वेदस्यान्योऽन्याश्रयदोषग्रस्तत्वेन न तेनागमेन परमेश्वरसिद्धिः। इति प्रमाणाभावात् परमेश्वरसिद्धिर्न भवति, प्रमाणाभावश्च प्रमेयाभाव साधक इति नियमः। अत एव सप्तमरसो न सिध्यति, तस्मिन् प्रमाणाभावात्। तद्वत् प्रकृते प्रमाणस्याभावेन कथं प्रमेयस्य परमेश्वरस्य सिद्धिः,

शास्त्र ब्रह्ममें प्रमाण है। ऐसा हुआ तब द्वितीय अधिकरण लक्षणरूप से साध्य ब्रह्म का उपस्थापक है, और यह तृतोय सूत्र हेतु का उपस्थापक है। इस प्रकार से यद्यपि दोनों समानार्थक होने से एक प्रकरण सिद्ध होता है, तथापि निराकरणीय जो संशय पूर्वपक्षादि उसके भेद होने से दोनों अधिकरण भिन्न हैं। इस विषय को वृत्तिकार कहते हैं, जो यहां जगत् के जन्मस्थिति और प्रलय के कर्तृरूपसे सिद्ध ब्रह्म है, वह ब्रह्म प्रमाणान्तर अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमानादिप्रमाणों से अवगत होता है? अथवा केवल वेदान्त प्रमाण से अवगत होता है? इसमें वादियों की विप्रतिपत्ति ऐसी है कि - कोई कहते हैं – ब्रह्म अनुमानप्रमाणगम्य है, कोई कहते है कि - ब्रह्म शास्त्रप्रमाणमात्रगम्य है, तो एतादृश विप्रतिपत्ति में यह संदेह होता है कि - ब्रह्म प्रमाणान्तरगम्य है, अथवा शास्त्रगम्य है, संशयोपस्थापकवाक्यविशेष का नाम विप्रतिपत्ति है, कहीं कहीं तो साधारणादिधर्मदर्शन से भी संशय होता है।

तदसिद्धौ च कम्प्रमाणविशेषमवलम्ब्य वेदान्तविचारः स्यात्, तदभावे च कथं वेदान्तशास्त्राणामारम्भो भवेदिति सर्वमाकुलं भवतीति विचार्य परमेश्वरे प्रमाणं दर्शयितुमुपक्रमते– "शास्त्रयोनित्वात्" इति, शास्त्रम्– ऋग्वेदादिकं योनिः प्रमाणं यस्य, योनिशब्द उत्पादकताकारणतावाचकः । कारणं च द्विविधम्– कारकरूपं ज्ञापकरूपं च, यथा– 'दण्डेन घटः' इत्यत्र येयं तृतीया सा दण्डे जनकतालक्षणं कारणत्वमभिव्यनक्ति, द्वितीयं च 'प्रदीपेन घटः' इति । अन्तर्हिते घटे प्रदीपस्य ज्ञापकता । प्रकृते ऋग्वेदादिकं न परमेश्वरं जनयति, अपि तु ज्ञापयति, परमेश्वरस्य नित्यत्वेनाजन्यत्वात् शास्त्रं केवलं तं ज्ञापयति, नित्यस्यापि ज्ञाप्यत्वसम्भवात् । अर्थात् परमेश्वरस्य स्वरूपाधिगमे प्रयोजकमेव शास्त्रम्, एतादृशं शास्त्रं योनिः प्रमाणं यस्य तच्छास्त्रयोनि, तस्य भावः शास्त्रयोनित्वम्, तस्माच्छास्त्रयोनित्वात् । एवं चेदं सूत्रं हेतुरूपं द्वितीयसूत्रं साध्यपरकमिति उभयोः सूत्रयोरैकार्थ्यादेकमेवाधिकरणं कर्तव्यं कथमधिकरणद्वयमिति,

इस संदेह के बाद पूर्वपक्ष होता है कि–शास्त्र तो प्रमाणान्तर से अनधिगत अर्थ का ही ज्ञापक होता है, अतः ब्रह्म में शास्त्रप्रमाण नहीं है किन्तु अनुमानप्रमाणसे ही ब्रह्म अधिगत है अतः अनुमानगम्य ही है, अर्थात् शास्त्र तो अन्य किसी प्रमाण से अप्राप्त जो स्वर्ग अपूर्वादिक पदार्थ है उसका नियामक होने से प्रमाण है, और जो प्राप्त का प्रापक सो अनुवादक होता है, नियामक नहीं, प्रकृत में तो ब्रह्म प्रमाणान्तरप्राप्त होने से तादृशशास्त्र का कोई फल नहीं है, अतः शास्त्र ब्रह्म को नहीं समझाता है, किन्तु कार्यलिङ्गक अनुमान से ब्रह्म गम्य है । तथाहि - द्व्यणुकादिरूप पृथिवी सकर्तृक है, कार्य (जन्य) होने से, जैसे जो जो कार्य (जन्य) होते हैं, वे सब किसी कर्ता से जन्य होते हैं, जैसे घटपटादिकार्य जन्य होते हैं वह सचेतनकुलालादिकर्तृक हैं, ऐसे द्व्यणुकादि कार्य (पदार्थ) भी जन्य है, तो वह भी अवश्य किसी कर्ता से जन्य हैं और कर्ता वह कहलाता है, जो कार्योपादानविषयकप्रत्यक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमान् हो, प्रकृत में द्व्यणुक का उपादान

तथापि निराकरणीयसंशयपूर्वपक्षादीनामुभयत्र विभिन्नत्वादधिकरणद्वयं घटत एव। तत्र केन प्रमाणेन ब्रह्मणः सिद्धिः ? रूपस्पर्शादिरहितत्वेन अभिचारिलिङ्गरहितत्वेन सादृश्यज्ञानरहितत्वेन चेतरप्रमाणाविषयत्वेऽप्यागमप्रमाणेन ब्रह्म साधयितुं सूत्रमिदं प्रवर्तते, इति।

अत्र "जगज्जन्मादिकारणत्वेने"— त्यादिसंशयपर्यन्तं वृत्तिग्रन्थः, यो हि जडजङ्गमात्मकजगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानं स परमेश्वरः, एवं क्रमेण परमेश्वरस्य सिद्धिः प्रतिपादिता द्वितीयसूत्रेण, तत्र संशयो भवति यदयं परमेश्वरः प्रमाणान्तरेणानुमानादिना ज्ञायते, वा वेदान्तशास्त्रेणैव ? इति पूर्वपक्षस्तत्रैवं भवति— यत् परमेश्वरः प्रमाणान्तरेणानुमानेनैव ज्ञायते न तु शास्त्रेण, यतोऽप्राप्ते शास्त्रमर्थवद् भवति' इति नियमात्। अयमाशयः यद्वस्तु प्रत्यक्षादिप्रमाणेन नाधिगतं, तस्य ज्ञापकं यद् भवेत् तदेव शास्त्रम्। यथा— "स्वर्गकामो यजेत" अत्र स्वर्गकामनावतः पुरुषस्य कृते स्वर्गसाधनीभूतो यागो न प्रमाणान्तरेण प्राप्तस्तादृशयागस्य

कारण परमाणु का प्रत्यक्षज्ञान अस्मदादि को होना अशक्य है, अतः तादृश चिकीर्षाकृतिमान् भगवान् सर्वेश्वर श्रीराम ही हो सकते हैं, तो तत्कर्तृत्व से श्रीराम की सिद्धि होती है। कोई तो कहते हैं कि प्रत्यक्ष-प्रमाण-सिद्ध भी हैं भगवान् यथा - भक्तशिरोमणि, आञ्जनेय (हनुमान्) को प्रतिदिन प्रतिक्षण साकेताधिपति का साक्षात्कार होता रहता है, अतः फलितार्थ यह हुआ कि-प्रमाणान्तरगम्य परमेश्वर हैं, न तु शास्त्रैकगम्य हैं। यह पूर्व पक्षियों का अभिप्राय हैं। जिस को वृत्तिकार ने "इति पूर्वः पक्षः" इस वर्णसमुदाय से अभिव्यक्त किया है।

अब इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं, अर्थात् उसका उपक्रम करते हैं वृत्तिकार "अत्रोच्यते " शास्त्रयोनित्वादि' - तीति। सर्वं वाक्यं सावधारणम् इस नियम से शास्त्र जो ऋग्वेदादिक, वही है योनि - प्रज्ञापक प्रमाण जिसका एतादृश परब्रह्म है, इस प्रकार के कथन से यह सिद्ध होता है कि - ब्रह्मा-

बोधनात् तादृशं प्रमाणं भवति। यत्र तु घटादिर्लौकिकप्रमाणसिद्धस्तादृश-घटस्य बोधकः शब्दो न प्रमाणम्, अपि तु अनुवादक एव तद्वदिहापि क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकम्, कार्यत्वात् घटवत्। यद् यत् कार्यं तत् सर्व-मवश्यं केनापि कर्त्रा जनितं भवति यथा– घटादिकार्यं कुलालादिना जनितं भवति। उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वमेव कर्तृत्वम्, तदत्र क्षित्याद्यनेकविधकार्यस्य परमाणुरेवोपादानकारणं तस्य परमाणोर-स्माकं प्रत्यक्षज्ञानाभावात् तथा कृतेश्चाभावान्नास्मदृशास्तादृशस्य क्षित्यादेः कर्तारः संभवन्ति किन्तु अतीन्द्रियार्थदर्शी भगवानेव तस्य कर्ता परिक-ल्पितो भवति, इत्यनुमानेनैव जगत्कारणस्य परमेश्वरस्य सिद्धिर्जायते। न च यो हि कर्ता भवति, स सशरीरो भवति, यथा कुलालादिः न चायं परमेश्वरः शरीरवान्, "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्य-कर्णः" इत्यादिश्रुत्या लोकप्रसिद्ध्या च तस्य शरीराभावात्। ततश्च

वगति में शास्त्रमात्र ही प्रमाण है, अनुमानादिक प्रमाण नहीं है। अत एव "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" मैं उस औपनिषद उपनिषन्मात्र से अधिगत आत्मा को पूछता हूँ" इत्यादि शास्त्र में परमात्मा श्रीसीतारामजी को शास्त्र-मात्र प्रमाण से गम्य बतलाया है। यदि वह ज्ञेय परमात्मा इतरप्रमाण से भी अधिगत हो, तब तो औपनिषदविशेषण अनुकूल नहीं होगा। अतः शास्त्रमात्र प्रमाण से श्रीरामजी ज्ञेय होते हैं।

अथवा जो अल्प अक्षर से अधिक अर्थ समझाता है। उसे सूत्र कहते हैं, यही उस की सूत्रता है, अतः इस सूत्र का अन्य अर्थ करने पर भी वाक्यभेदादि दोष नहीं होने से इस सूत्र का दूसरा भी अर्थ होता है। ब्रह्म में जगत्कारणता का समर्थन करने से ब्रह्म में सर्वज्ञत्व तथा सर्वशक्त्या दिमत्त्व अर्थत एव (अर्थ से ही) सूचित होता है। इस बात को अभी दृढ़ करते हैं – "शास्त्रयोनित्वात्" शास्त्र जो ऋग्वेदादिक है योनि अर्थात् कर्तृरूप कारण होने से परमब्रह्म श्रीराम में सर्वज्ञत्व है, इस प्रकार से सूत्र का द्वितीय

क्षित्यङ्कुरादिकं न कर्तृजन्यं शरीराजन्यत्वात्, आकाशवत्, यत्र यत्र शरीरेणाजन्यत्वं भवति, तत्र तत्र कर्त्रजन्यत्वमपि भवति, आकाशस्य शरीराजन्यत्वेन कर्तृजन्यत्वस्याप्यभावादिति प्रत्यनुमानेन स्थापनानुमाने सत्प्रतिपक्षः समानबलबोधितसाध्यविपर्ययकत्वस्य तथात्वात्, अथवा साध्याभावव्याप्यवान् पक्षः सत्प्रतिपक्षः। साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्ष इति वा लक्षणादिति वाच्यम्, हेतुरस्तु साध्यं माऽस्तु इत्याकारकव्यभिचारशङ्कानिवर्तकानुकूलतर्कस्याभावेन प्रत्येकहेतोरप्रयोजकत्वेन हीनबलत्वाद् हीनबलश्च हेतुः प्रतिबन्धको न भवति। स्थापनानुमाने तु कार्यत्व– सकर्तृत्वयोः सर्वानुभूतकार्यकारणभावस्यैवानुकूलतर्कत्वाद् भवति साध्यसाधकता। एवं "कार्याऽऽयोजनधृत्यादेः पदात्प्रत्ययतः श्रुतेः। वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः" इत्यायोजनादिहेतुभिरेव परमेश्वरसिद्धिसम्भवेन प्रमाणान्तरेणैवेश्वरसिद्धिर्न शास्त्रेण, यतः शास्त्रस्य ज्ञातार्थज्ञापकतयैव प्रामाण्यादिति। न च प्रति-

अर्थ होता है। अर्थात् सर्वज्ञ के सदृश जो वेद तादृश वेद के उत्पादक होने से ब्रह्म में सुतरामेव सर्वज्ञत्व सिद्ध होता है। यहां यह जो महान् परमात्मा हैं, उनका निःश्वासरूप ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्वाङ्गिरस तथा इतिहास और पुराण हैं, यह जो वेदवाक्य है, सो इस सूत्रका विषय है, वहां यह वेदवाक्य, वेद के कारण परमेश्वरश्रीराम में सर्वज्ञत्व सिद्ध करता है। अथवा ब्रह्म में सर्वज्ञता सिद्ध नहीं करता है ? एतादृश संशय होता है। इस संदेह के बाद पूर्वपक्ष होता है कि - वेदोत्पादकरूप से ब्रह्म में सर्वज्ञता की सिद्धि नहीं हो सकती है, क्योंकि - वर्ण नित्य है, तो तादृशवर्णसमुदायरूप वेद भी नित्य हुआ, तब नित्यपदार्थ का उत्पादन नहीं हो सकता है। और "वाचा विरूप ! नित्यया" हे विरूप ! नित्यवाणीवेद से" इत्यादि श्रुति, तथा "अनादिनिधना ह्येषा वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः" स्वयम्भू ने सर्ग के आदि में उत्पादविनाशरहित अत एव नित्यवेदमयी वाणी अभिव्यक्त की, जिससे संसार की कार्यमात्र प्रवृत्त होता है

क्षणविनाशप्रतियोगिमेघमालादौ कार्यत्वदर्शनात् कर्तुश्चादर्शनात्तत्र व्यभिचार इति वाच्यम् । तत्रापि कर्तुः परमेश्वरस्य सत्त्वस्वीकारात्, अन्यथा सर्वशरीरकत्वव्यापकत्वयोर्व्याघातात् । तस्मादनुमानेनैव परमेश्वरस्य सिद्धिर्भवति, न तु तदन्येन प्रमाणेनेति पूर्वपक्षिणामाशयः ॥

एतत्सर्वं पूर्वपक्षिणामभिप्रायं हृदि निधायाऽऽह वृत्तिकारः- अत्रोच्यते- 'शास्त्रयोनित्वाद्'' इतीति, तत्र "यतो वा इमानि भूतानि जायन्त"- इत्यादिशास्त्रमेव योनिः=प्रमाणं- प्रज्ञापकं यस्य तच्छास्त्रयोनि, तस्य भावः शास्त्रयोनित्वं तस्माच्छास्त्रयोनित्वात्, अर्थात् परमेश्वरस्य स्वरूपाधिगमे शास्त्रमेव प्रज्ञापकं भवति, यथा- घटादिस्वरूपाधिगमे प्रदीपः प्रज्ञापकस्तथैव । अनुमानं तु प्रमाणं शास्त्रमूलमादायैव प्रवर्तते, अन्यथा प्रत्यक्षाविषयपरमेश्वरेण सह व्याप्तेरेवासम्भवात् तदनुमानं न स्यात् । यदि कदाचिच्छास्त्रेतरप्रमाणमपि परमेश्वरलब्धपदं भवेत्तदा

इत्यादि वचन से वेद में नित्यत्व का प्रतिपादन होता है । अतः नित्य निर्दोष-अपौरुषेय वेद को होने से, तादृशवेदके उत्पादकरूप से ब्रह्म में सर्वज्ञत्व नहीं हो सकता है । न वा वेद के उपादानकारणत्व से भी परमेश्वरमें सर्वज्ञता की सिद्धि हो सकती है, क्योंकि - उपादान उपादेय में सर्वत्र सजातीयत्व देखने में आता है, जैसे घट मृत्तिका में । यहां तो जगत् का उपादान ब्रह्म है, और उपादेय जगत् जडचेतन है, तब विजातीय में कार्यकारणभाव किस प्रकार से होगा ? यदि कदाचित् द्रव्यत्व प्रमेयत्व व्यापकधर्म से सजातीय मान कर प्रतिपादन करें तो भी वर्णपारायणतः जो व्यापृत है, उसका ज्ञान नहीं होने से वेदकर्तृत्वरूप से ब्रह्म का सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होगी । यह हुआ पूर्व पक्ष, इस का उत्तर है कि - ब्रह्म को सम्पूर्ण—वेदजनकत्वरूप से सर्वज्ञत्व सिद्ध होता है, इसकी सर्वज्ञतामें अनेक श्रुति प्रमाण है । यथा "रूपस्मत ह ते भूतस्य विश्वमात्मने" इति यजुर्वेदे, सामवेदोऽथर्ववेदो वा अङ्गिरसः तस्य पुराणविद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानि" इस महान् पुरुष का

"तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामी"–त्यादिशास्त्रे प्रोच्यमानं बाध्येत। उपनिषत्स्वेवाधिगत औपनिषदः। यथा–स्वर्गापूर्वादिकं शास्त्रमात्रसमधिगम्यं न तु प्रमाणान्तरगम्यम्, एवमेव प्रकृतेऽपि शास्त्रप्रमाणमात्रगम्यता ब्रह्मणः। न च यदि ब्रह्म शास्त्रप्रमाणकं तदा पूर्वसूत्र एव "यतो वा इमानी"—त्यादिशास्त्रेण शास्त्रप्रमाणकत्वं तस्य सिद्धमेव तत्कथमिदं सूत्रान्तरमिति वाच्यम्। पूर्वसूत्रे स्पष्टरूपेण तत्कथनात् कदाचिदनुमानादिगम्यत्वमपि कोऽपि विजानीयादिति सन्देहनिवृत्त्यर्थं सूत्रान्तरस्य कर्तुमौचित्यात् वेदान्तवाक्यलक्षणप्रसूतावगमनमेव सूत्राणां प्रयोजनमिति ॥

अथवा यद् बह्वर्थसूचकं भवेत् तत् सूत्रम्। इदमपि बहुमर्थं सूचयति, ततश्च शास्त्रयोनिरित्यत्र षष्ठीतत्पुरुषसमासमादृत्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादेरनेकशाखास्थानयुक्तस्य मायादिवत् सकलपदार्थावभासनसमर्थस्यात एव सर्वज्ञकल्पस्य योऽप्रयत्नेन लीलान्यानेन निर्माणं चकार स परमेश्वरोऽतिशयेन सर्वज्ञः। अर्थात् परमेश्वरः केवलं भूतभौतिकप्रपञ्चस्यैव न जनको-

निःश्वासस्वरूप यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् श्लोकसूत्र और उन सबका अनुव्याख्यान को बनाया। (जिसतरह हमलोगो को निःश्वास होने में परमात्मविशेष की आवश्यकता नहीं होती है, उसी प्रकार लीलान्याय से परमेश्वरने अनन्य प्रयत्न से इन वेदो को उत्पन्न किया) एवं "छन्दांसि जज्ञिरे" परमेश्वरने छन्दो को बनाया। इत्यादि वेद प्रमाण से सिद्ध होता है कि - परमेश्वर वेद का उत्पादक है, यह सिद्ध होता है। यहां प्रमाणान्तर से अर्थ समझकर तदनुरूपेन वेद का निर्माणकर्तृत्व नहीं है जिससे कि - विषयापेक्ष होने से वेद में पौरुषेयत्व की आपत्ति होती है, नवा केवल उच्चारयितृत्वरूप कर्तृत्व है; जिससे कि - अस्मदादि अध्यापकसदृश हो जाने से विशिष्टब्रह्मकर्तृत्व वेद में सिद्ध नहीं होगा इसलिये सृष्टिके पूर्व में यादृशक्रमस्वरवर्णानुपूर्वीमान् वेद था, तादृशक्रमस्वरवर्णानुपूर्वीविशिष्ट वेद का निर्माण कर लोकों मे उस वेद का प्रचार करते हैं, लोकभिन्न परमेश्वर।

ऽपि तु असौ नैयायिकाभिमतशब्दराशिभूतस्य शास्त्रस्यापि जनकोऽस्त्येव, "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमृग्वेदः" इत्याद्यनेकश्रुतिभिः परमेश्वरस्य वेदजनकत्वश्रवणात् । न च ककारादिवर्णानां प्रत्यभिज्ञया युक्त्यन्तरेण नित्यत्वश्रवणात्तद्राशिरूपस्यापि तथात्वात् कथं तज्जनकत्वं परमेश्वरस्य न हि नित्यस्योत्पत्तिः क्वचिद् दृष्टा श्रुता वोपपद्यते वाचाम्, प्रत्यभिज्ञाया जातिविषयकत्वेन वर्णनित्यतायामौदासीन्यात् । किंच मीमांसकमते वर्णस्य नित्यत्वेऽपि वर्णपदवाक्यानुपूर्वीविशिष्टस्यानित्यत्वात् । वैयासिकमतमनुवर्तमानास्तु न नैयायिकवत् प्रतिक्षणविनाशित्वं मीमांसकवदपि न सर्वथा नित्यत्वमनुमन्यन्ते, अपि तु सर्गादौ जायमानत्वं प्रलये प्रलीयमानत्वं च मन्यन्ते, यदपि वेदानां नित्यताप्रतिपादकं वचनं तदप्याकाशादिवदेव चिरस्थेमानमेव प्रज्ञापयति । परन्तु यादृशानुपूर्वीको वेदः प्राक्सर्ग आसीत् तदनुपूर्वीविशिष्टमेव वर्णराशिलक्षणं वेदं प्रज्ञापयति परमेश्वरः । अत एव प्रत्युच्चारणे भिद्यमानेऽपि न त्यजति कदा

"धाता यथापूर्वमकल्पयत्" "परमेश्वर जिस प्रकारक क्रमानुपूर्वीक वेद था, तादृशानुपूर्वीक ही वेद का निर्माण करते हैं" इत्यादि प्रमाण से सर्वज्ञत्व सकलवेदकर्तृत्व परमेश्वर में सिद्ध होता है, यही परमात्मा में अन्यविलक्षण वेदकर्तृत्व है कि - अन्यसंकलितक्रमवर्णाद्य न होने से स्वातन्त्र्येण पूर्वकल्पस्थ स्वकृतक्रमानुपूर्वीयुक्त वेद को इस कल्प में भी बनाने से वेद का कर्ता कहलाते हैं। ऐसा हुआ तब वेद को परमात्मकर्तृक होने पर भी अनादिसिद्ध वर्णक्रमानुपूर्वी तथा अर्थ को यथापूर्वहोने से वेद में स्वतःसिद्ध प्रामाण्य तथा अपौरुषेयत्व भी सिद्धहोता है। सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणकर्तृत्व का नाम होता है पौरुषेयत्व यहां सजातीयोच्चारणसापेक्ष हो उच्चारणविषयता है, अतःइस वेद में अप्रामाण्य की शङ्का भी नहीं होती है, क्यों कि - अखिलहेयप्रत्यनीक— सकलकामनावान् नित्यनिरतिशय ज्ञान से अनुभूयमान है पदार्थसमुदाय जिसको तथा निरवधिकमहिमवान् भगवान् श्रीसाकेताधिपतिश्रीरामात्मक ब्रह्म का

चिद्प्यपौरुषेयत्वम् । सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वस्यैव पौरुषेयत्वम् । इह तु सजातीयोच्चारणसापेक्षत्वेन तथात्वाभावादिति कृतं पल्लवितेनेति प्रकरणान्तरे द्रष्टव्यः ॥३॥

इति जगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्य- रामप्रपन्नाचार्य-योगीन्द्रकृतस्य श्रीरघुवरीय-वृत्तिविवरणस्य तृतीयं शास्त्रयोनित्वाधिकरणम् ॥ ३ ॥

तत्तु समन्वयात् १।१।४॥

तच्छास्त्रप्रमाणकत्वं ब्रह्मणः सम्भवति नवेति संशयः । तत्र शास्त्रस्य प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरप्रयोजनाभिधायितया ब्रह्मणश्च परिनिष्पन्नवस्तुतया न तस्य शास्त्रप्रमाणकत्वं सम्भवतीति पूर्वः पक्षः । अत्राभिधीयते– तुशब्दश्शङ्कां निवर्तयति । परिनिष्पन्नस्यापि ब्रह्मणो निरतिशयसुखरूपतया शास्त्रप्रमाणकत्वमस्त्येव । वेदान्तशास्त्रेण परमानन्दरूपस्य ब्रह्मणोऽभिधेयतयाऽन्वयात् । उपक्रमोपसंहारादिरूपतात्पर्यनिर्णायकैर्लिङ्गैस्समस्तानां वेदान्तानां परब्रह्मणि श्रीराम एव समन्वयः । स चेत्थम्– ‘सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्’, अत्र सूक्ष्मचिदचिच्छरीरं कारणरूपं ब्रह्मैव सत्पदेनाभिहितम् । ‘तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि’ (के. १।१।

अथ यद्वस्तु संशयरहितं प्रयोजन-रहितं च भवति तादृशवस्तुनो जिज्ञासा न भवति, यथा समनस्कचक्षुरादिसंनिकृष्टो बहलप्रकावेद वचन है । जिस व्यक्ति का अन्तःकरण रागद्वेष से कलुषित है, तादृश व्यक्ति के वचन में ही अप्रामाण्य की शङ्का होती है । जब यह वेद उत्पत्तिमान् हुआ, तब विनाशी अवश्य होगा । इस तरह से त्रिक्षणावस्थायित्वप्रसङ्ग होता है, ऐसा नहीं कहना क्योकि–ऐसा मानने पर जिस वेद को पण्डितजी ने पढा, उसी वेद को मैं भी पढता हूँ, यह जो स्थायित्व की प्रत्यभिज्ञा होती है, उसका बाध हो जायगा । अतः यथोक्त ही सुस्थ है इस विषयका विस्तार विवरण अन्यत्र किया जायगा ।३।

सारबोधिनी—जो पदार्थ सन्दिग्ध तथा सप्रयोजनक होता है उसकी ही जिज्ञासा होती है, किन्तु जो पदार्थ सन्देह तथा प्रयोजसे नरहित रहता है

४।) 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० ३। ८) अनया श्रुत्या परमात्मन एकस्यैव परिज्ञानेन मृत्युसन्तरणमुच्यते 'नान्यः पन्थाः' इति ह्युपायान्तरञ्च निषिध्यते। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म' (तै० ३।१।१) ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' (बृ० ४।१। १०) 'योह वै श्री रामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा' (रा० ता०) 'आनन्दो ब्रह्म' (तै०) 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' (मु० ३।२।९) 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते' (रा० पू० ता०) इत्यादिश्रुतयो ब्रह्मणः श्री रामस्यैव स्वरूपगुणविभूतिवर्णनं कुर्वत्यस्तत्रैव समन्विता भवन्ति। एवम् 'आत्मेत्येवोपासीत' (बृ० १।४।७) इत्याद्युपासनविध्यभिधानेनापि वेदान्तानां परमपुरुष एव समन्वयः।

शितो घटो न भवति केषांचिदपि जिज्ञासाविषयः। कुतः? संशयरहितत्वात्। तथा यद्वस्तु प्रयोजनरहितं भवति तदपि जिज्ञासितं न भवति यथा कीटपतङ्गादीनां दन्ताः। तथा प्रकृते ब्रह्मापि संशयप्रयोजनरहितमिति तदपि न जिज्ञास्यम्। तथा हि यः शरीरादीनां परिणामयिता स एव आत्मा ब्रह्म, स चायमात्मा सर्वेषां प्राणिनामहमस्मीत्यादि प्रत्यक्षेणैव ज्ञातत्वान्न भवति जिज्ञासाविषयः। एवमात्मज्ञानस्य प्रयोजन-

उसकी जिज्ञासा नहीं होती है। जैसे मनः संयोग विशिष्ट चक्षुः संनिकृष्ट प्रकाशादि संयुक्त घटकी जिज्ञासा कोई नहीं करता है क्योंकि—वह संदेहरहित तथा जलताड़नादिककार्य प्रयोजनरहित होने से वह भी जिज्ञासित नहीं होता हैं, अर्थात् सन्दिग्धत्व तथा सप्रयोजनत्व जिज्ञासा का व्यापक है। और जहाँ व्यापक नहीं होता है उस स्थल में व्याप्य भी नहीं रहता है, यथा व्यापक जो वह्नि उसका अभाव रहता हैं तो उस स्थल में व्याप्य धूम का अभाव अवश्य रहता हैं जलादिक में। इसी प्रकार जिज्ञासा का व्यापक है

अयमत्र निर्णयः— 'पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा' (श्वे० १।६) "भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा" (श्वे० १।१२ 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्' (श्वे० ६।१३) "स कारणं करणाधिपाधिपः' (श्वे ६।९) 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्' (बृ० ३।७।३) 'य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्' (बृ० ३।७।२२) इत्यादि-श्रुतयश्चिदचिदीश्वरस्वरूपाणि भोक्तृभोग्यनियन्तृतया पृथगुपवर्ण्याचिद्वस्तुनः स्वरूपपरिणामं चिद्वस्तुनो ज्ञानसङ्कोचविकाशरूपपरिणामं नियन्तुर्ब्रह्मणस्तादृशपरिणामराहित्यञ्च प्रतिपाद्य चिदचितोर्ब्रह्मशरीरत्वं ब्रह्मणश्च तदात्मतया तदन्तर्यामित्वं नित्यानवद्यत्वं चाभिदधते। एवञ्च सृष्टेः प्राक् (ङ्) नामरूपविभागानर्हसूक्ष्मचिदचिच्छरीरं ब्रह्मैव कारणम्। तदेव च नामरूपविभागार्हस्थूलचिदचिद्विशिष्टं सत्कार्यत्वं भजते। एतादृक्

मपि किमपि नोपलभ्यते सद्यस्तस्माद्ब्रह्म न जिज्ञास्यम्। अजिज्ञास्यत्वे च तत्प्रतिपादकवेदान्तशास्त्रस्यारम्भोऽपि न कर्तव्य इत्यादिशङ्कां प्रथमाधिकरणेन निराकृत्य प्रतिपाद्य च ब्रह्मणो जिज्ञास्यत्वम्, तदनु च जिज्ञास्यं ब्रह्म तत् किं लक्षणकमिति जिज्ञासाया अपि निराकरणं द्वितीयाधिकरणेन संपाद्य जिज्ञास्यवस्तुनि प्रमाणं किमित्यनुयोगे लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुनः सिद्धिरिति सर्ववादिसर्वशास्त्रप्रसिद्धतया ब्रह्मणि लक्षणं

सन्देह तो सन्देह के अभाव में व्याप्य जो जिज्ञासा उसका अवश्यमेव अभाव है, तब ब्रह्मजिज्ञासा का व्यापक जो आत्मा उसका संदेह उसका अभाव होनेसे व्याप्य जो ब्रह्म जिज्ञासा सो नहीं हो सकती है। ब्रह्म शब्दका अर्थ है जो शरीरादिक को परिणमित करें उसको ब्रह्म कहते हैं, प्रकृत में शरीर के परिणमित करने वाला जीवात्मा है तो वह भी ब्रह्मपद बोध्य है और यह जीव तो कीट पतंग से लेकर देवर्षिपर्यन्त प्रत्येक प्राणीको शरीरेन्द्रियादि से भिन्नरूप से अहं इत्याकारक प्रत्यक्षानुभवसिद्ध होनेसे असंदिग्ध है, तब संदेहाभावसे जिज्ञासा किस तरह से हो सकती है। नहीं कहो कि—अहं स्थूलः अहं कृशः

स्वरूपं सामानाधिकरण्यमुखेन 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छा०) इत्यादिश्रुतिभिरुपपादितम्। न चैवं जीवपरयोस्स्वरूपस्वभावाभ्यां भिन्नत्वान्नित्यत्वाच्च वेदान्तप्रसिद्धाया एकविज्ञानेन सर्वविज्ञान प्रतिज्ञाया हानिरिति वाच्यम्। जीवेऽवस्थान्तरापत्तिरूपपरिणामस्याभ्युपगमात्तस्य ब्रह्मकार्यत्वेन नोक्तप्रतिज्ञाया हानिरित्यवेहि। इयांस्तु विशेषो यदचेतनवत्स्वरूपपरिणामो जीवे न भवति। अपि तु ज्ञानसङ्कोचविकाशरूपोऽन्यथाभाव एव स्वीक्रियते। 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' (छा० २। १८) इत्यादिकाः श्रुतयस्तु स्वरूपान्यथाभावरूपां जीवस्योत्पत्तिं वारयन्त्यश्चरितार्थाः। इत्थं परस्य ब्रह्मणः स्वरूपं तत्प्राप्त्युपायश्चाभिदधच्छास्त्रं तस्मिन्नेव कार्त्स्न्येन समन्वेतीति सिद्धम्।

इति श्रीरघुवरीयवृत्तौ समन्वयाधिकरणम्

चतुः सूत्री समाप्ता ॥

द्वितीयेन तृतीयाधिकरणेन च प्रमाणं तस्मिन्ब्रह्मण्युपदर्शितवान् यथाविधि। परन्तु शास्त्रप्रमाणकत्वं दर्शितं प्रतिज्ञामात्रेण हेतुस्तु न स्पष्टरूपेण दर्शितः न च प्रतिज्ञामात्रं वस्तुनः साधकं, नहि भवति पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञामात्रेण "संभावितः प्रतिज्ञायां पक्षः साध्येत हेतुने"त्यभियुक्तोक्तेरिति। ब्रह्मणि वेदान्तस्य प्रामाण्यं न संभवति तत्र ब्रह्मणि वेदान्तानां समन्वयासंभवादित्याकारक-शङ्कायाः समुच्छेदाय प्रक्रमते। कथं तृतीयाधिकरणेन शास्त्रप्रमाणकत्वं ब्रह्मणः, यतः "प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतके-

इत्याकारक प्रतीति होती है, तो इस प्रतीति के बलसे शरीर ही आत्मा सिद्ध होता है तदतिरिक्त आत्मा तो है ही नहीं तब यह प्रश्न ठीक नहीं है ऐसा नहीं कहना क्योंकि—शरीर आत्मा मानो तबतो जो मैंने बाल्यावस्था में माता-पिता का अनुभव किया था वही आज मैं पौत्र, दौहित्र का अनुभव करता हूँ इत्याकारक स्मरण नहीं होगा, क्योंकि बालकशरीर और वृद्धशरीर तो एक नहीं है। अवयव के उपचय अपचय से शरीर प्रतिक्षण में विनष्ट होनेसे विनाशी है।

न वा। पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते" इति नियमात् यानि-शास्त्राणि सर्वाणि क्रियापरकाण्येव। "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्य-मतदर्थानाम्" इति जैमिनीय-वचनात् शास्त्राणां क्रियापरत्वमेव। वेदान्त वाक्यानि तु न क्रिया-प्रतिपादकानि अक्रियार्थत्वात्, तत्कथं वेदान्तानां-ब्रह्मप्रतिपादकत्वमिति शङ्काया निराकरणाय चतुर्थाधिकरणीयं सूत्रमिदं प्रवर्तते 'तत्तु समन्वयात् ॥१।१।४॥

अत्र तत् इत्येकं पदम् तु इति द्वितीयं, समन्वयादिति तृतीयं पदम् एवं च पदत्रयघटितमिदं सूत्रम् तत्र तदिति प्रथमपदम् प्रकृतब्रह्मपरा-मर्शकतया द्वितीयान्तम्। अव्ययं तु पदं पूर्वशङ्काया निराकरणपरकम्। ततश्च जगज्जन्मादिकारणं ब्रह्म यत् तादृशं ब्रह्म शास्त्रप्रमाणेन सिद्धं तादृशपरमात्मानं वेदान्तवाक्यानि स्वकीयतात्पर्यबलेन प्रतिपाद-यन्त्येव। (उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये')। एतानि उपक्रमादीनि तात्पर्यग्राहकलिङ्गसमन्वितानि वेदान्तवाक्यानि नियमतः परमात्मानं बोधयन्तीति। अत्र सर्वाण्यपि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादीनि यानि वेदान्तवाक्यानि तानि सर्वाण्यपि विषयः। संशयाकारं तु दर्शयति वृत्तिकारः। पूर्वोदीरित शास्त्रप्रमाणकत्वं ब्रह्मणः संभवति नवेति संशयः। इति वृत्तिः। अत्रापि विप्रतिपत्तिवाक्याधीन एव संशयः, स च परमात्मनिष्ठशास्त्रप्रतिपाद्यत्व

यदि बालकशरीर तथा वृद्धशरीर एक होता तब लघु शरीर से अनुभूत वस्तु का स्मरण होता। अन्यदृष्ट वस्तु का स्मरण अन्यव्यक्ति को नहीं होता है। और यहाँ जो मैंने बाल्यावस्था में माता-पिता का अनुभव किया था वही मैं अभी पौत्रादिका अनुभव करता हूँ इत्याकारक अनुसंधान नहीं होता, इसलिए शरीरादिरूप आत्मा नहीं है किन्तु शरीरादिभिन्न आत्मा है। एवं स्वप्ना-वस्थामें दिव्य शरीर को धारण करके तदुचित भोगको भोगता हुआ मनुष्य जाग्रत् अवस्था में कहता है कि मैं देव नहीं हूँ, मैं तो मनुष्य हूँ, इस प्रकार

प्रतिपाद्यत्वाभावप्रकारक एव एकधर्मिकविरुद्धानेककोटिकः संशय इति तल्लक्षणात् । तदुक्तं जगद्गुरुणा श्रीश्रियानन्दाचार्येण श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायाम्–"एकस्मिन् संशयो भावाभावप्रकारिका मतिः" इति (१।३) तत्र शास्त्रस्य पुरुषहितोपदेशकस्य क्रियाप्रतिपादकप्रवृत्ति निवृत्त्यन्यतरजनकत्वेनैव प्रामाण्यम्' "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्" । तथा 'प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा । पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते' इति नियमात् वेदान्तवाक्यानां क्रियाप्रतिपादकत्वाभावात् तथा ब्रह्मणः परिनिष्पन्नत्वेन न शास्त्रप्रमाणकत्वम् कथमपि संभवतीति वृत्तिस्थितपूर्वपक्षवाक्यघटकाक्षरार्थः । पूर्वपक्षाभिप्रायस्तु इत्यम् तथा हि घटादिशब्देन कम्बुग्रीवादिमतोऽर्थस्यैव ज्ञानं जायते न तु घटपदेन पटाद्यर्थस्य बोधो जायते, तथात्वे एकस्य शब्दस्यार्थवाचकत्वप्रसङ्गात्, स च नेष्टस्तथात्वे तदितरपदानां वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । तस्मात् पदपदार्थयोः संबन्धरूपशक्तिरपेक्षिता सा च अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इत्याकारकपरमेश्वरेच्छारूपा । यथा घटादिपदानामुपस्थितौ घटादिपदजन्यज्ञानस्यावश्यकता जायते तथा घटपदपदार्थ शक्तिज्ञानस्याप्यावश्यकता अन्यथा अमुकपदस्यामुकपदार्थवाचकत्वं नान्यस्येति व्यवस्था न स्यात् । तस्मात् प्रथमतः शक्तिज्ञानमावश्यकम् । शक्तिज्ञानं च वृद्धव्यवहारसाध्यम् । वृद्धव्यवहारश्च कार्यमात्रविषयकः, तथा हि कार्यताप्रतिपादकं तु भवति लिङादिपदम् 'घटमानय' इत्यादि प्रयोजकवृद्धवाक्यश्रवणानन्तरं प्रयोज्यवृद्धस्य घटाद्यानयने प्रवृत्तिमुप-

से देव शरीर का बाध होने पर भी अहमाकारक अनुव्रजन होने से देह आत्मा नहीं है, किन्तु देहादि से अतिरिक्त आत्मा है सो यह आत्मा सर्वानुभवसिद्ध होने से संदेहरहित है । तब एतादृशसंदेहरहित आत्मा की जिज्ञासा नहीं हो सकती है । इत्यादिरूप से जो शास्त्र के अनारभ्यत्वप्रयोजक जो शंका थी उस शंका का प्रथम अधिकरण से निराकरण कर ब्रह्म में जिज्ञास्यत्व का प्रति-

लभ्य तत्समीपस्थो व्युत्पत्तिमिच्छन् बालकस्तस्य प्रवृत्तौ स्वकीयप्रवृत्तौ इष्टज्ञानजन्यत्ववत् कार्यताज्ञानजनकत्वमनुमाय शक्तिं निश्चिनोति तादृश पदानाम् । तदनन्तरं 'घटं नय पटमानय' इत्यादिवृद्धव्यवहारतो घटादिपदानामावापोद्वापाभ्यां कार्यान्विते एव शक्तिं निश्चिनोति, ततश्च कार्यतावाचकपदयुक्तस्यैव बोधकत्वं न तु तद्विरहितपदानां बोधकत्वं शक्तेरभावात् । प्रकृते कार्यवाचकपदरहितवेदान्तानां तद्रहितपदरहितत्वेन तादृशपदानां कथं ब्रह्मबोधकत्वम् । अबोधकत्वे च नैरर्थक्यम् । अथवा कार्यबोधकमध्याहृत्योपासनादिषु वेदान्तवाक्यं संप्रयुज्य तस्य सार्थक्यं संपादनीयं न तु तेषां स्वातन्त्र्येण प्रामाणिकत्वमिति पूर्वपक्षिणामाशय इति ॥

यद्यपि ब्रह्म परिनिष्पन्नसिद्धस्वरूपं च तत्र क्रियाजन्यलेशोऽपि न विद्यते तथापि एतादृशब्रह्मस्वरूपं बोधयतामपि "सदेव सौम्ये"-त्यादिवेदान्त वाक्यानां ब्रह्मस्वरूपबोधकत्वं संभवत्येव "उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये" इत्यादि तात्पर्य हेतुसमन्वयात् । अयं भावः पूर्वकार्यार्थव्युत्पत्तिः कारणतया स्वीक्रियते तदनन्तरं जाते बोधे त्यज्यते, कार्यार्थव्युत्पत्तेः कारणता । अत एव 'चैत्र पुत्रस्ते जातः' इत्यादिस्थले वार्ताहारपुरुषवाक्यश्रवणानन्तरं चैत्रस्य मुखविकाशं दृष्ट्वा चैत्रपुत्रजातद्रष्टा बालः चैत्रसुखमनुमिनोति ततश्चैत्रस्य तादृशसुखज्ञानकारणं पुत्रजन्मैव कल्पयति, एवं क्रमेण सिद्धार्थपदेष्वपि व्युत्पत्तिर्भवत्येव । एवं क्रमेण वेदान्तवाक्येष्वपि

पादन किया । उसके बाद जिज्ञास्य ब्रह्म का लक्षण क्या हैं ? एतादृश शंका के निराकरण करने की इच्छासे पदार्थ की सिद्धि लक्षण प्रमाण द्वारा से ही होती है यह बात सर्वानुमत होने से द्वितीय तथा तृतीय अधिकरण से ब्रह्म का लक्षण तथा प्रमाण का भी उपपत्तिपूर्वक प्रतिपादन किया गया है । ब्रह्म में प्रमाण शास्त्र योनित्वाधिकरण में यथावत् प्रतिपादन किया है—ब्रह्म का बोधक प्रमाण

संभवत्येव परिनिष्पन्नब्रह्मबोधकत्वमित्यभिप्रायेणाह वृत्तिकारः "अत्रा भिधीयते" इति, "तत्तु समन्वयादि"-ति सूत्रे योऽयं तु शब्दः स च पूर्व- पक्षव्यावृत्तिपरकः। तत् शब्दो ब्रह्मबोधकः तद् -ब्रह्म शास्त्रप्रमाणकं कुतः समन्वयात् सर्ववेदान्तवाक्यानां तात्पर्यतस्तदर्थस्यैव बोधकत्वादिति सूत्रार्थः। अयमेवार्थः प्रदर्श्यते वृत्तिकारेण 'परिनिष्पन्ने'-त्यादिप्रकर- णेन। यद्यपि परिनिष्पन्नमर्थात् सिद्धस्वरूपं न तु साध्यस्वरूपं ब्रह्म, तस्य ब्रह्मणः "सत्यं ज्ञानमानन्दम्" इत्याद्यनेकश्रुत्या सुखस्वरूपत्वात् तादृशस्य ब्रह्मणः शास्त्रप्रमाणकत्वं संभवत्येव वेदान्तशास्त्रेण "सत्यं ज्ञानमि"-त्यादिवाक्येन परमानन्दस्वरूपस्य, अर्थात् निरतिशयनिरवधिक सुखाकारस्य तस्य प्रतिपाद्यतयाऽन्वयादिति। उपक्रमोपसंहारादिता- त्पर्यग्राहकहेतुभिः सर्वेषामेव वेदान्तवाक्यानां परब्रह्मणि सर्वव्यापक- परमेश्वरस्वरूपे श्रीरामे साकेताधिपतावेवान्वयात्। एवमेव समन्वय प्रकारं दर्शयितुमाह "स चेत्थमि"ति, स च समन्वयप्रकारः इत्थं वक्ष्य- माणप्रकारेण भवतीत्यर्थः। "सदेवेत्यादि" हे सौम्य श्वेतकेतो! इदं परिदृश्यमानं जड़चेतनात्मकं सर्वमपि जगत् अग्रे सृष्टेः पूर्वकाले एकम् एकमेव अद्वितीयं सजातीयद्वितीयरहितं समस्तचिदचिच्छरीरकसद्रूपमेव जड़चेतनस्वरूपकपरमात्मरूपं सदेवासीत्। अर्थात् सृष्टेः पूर्वकाले विभक्तनामकं नाभवत्, अपि तु अविभक्तनामरूपकपरमात्मस्वरूपक- मेवाभवदित्यर्थः। अत्र श्रुतौ यत् सत्पदं तेन सत्पदेन सूक्ष्मचिदचिच्छ- रीरकं सर्वजगत्कारणरूपपरमेश्वरः श्रीराम एव परिगृहीतो भवति।

वेदान्त शास्त्र है यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, सत्यं ज्ञानम् इत्यादि श्रुति का उदाहरण को बतलाते हुए। परन्तु शास्त्र नाम है उसका जो प्रवर्तक अथवा निवर्तक हो, तो यह वेदान्त तो प्रवृत्तिनिवृत्तिरहित परिनिष्पन्न ब्रह्म का अर्थात् सिद्ध पदार्थ का प्रतिपादक है। शास्त्र तो क्रिया का प्रतिपादक है, तब तो इस वेदान्त को ब्रह्म का प्रमाण किस तरह से कहा जा सकता है, इत्यादि

कस्मात् कारणात् एकः सर्वशरीरकः परमात्मैवात्र परिगृह्यतेऽत्र श्रुतौ तत्र कारणं वक्तुमाह वृत्तिकारः "तदेव ब्रह्म" इत्यादि, तदेव समस्त चिदचिच्छरीरकं परब्रह्मैव त्वं विद्धि-जानीहि। "तमेव" इत्यादि तं सर्वं सूक्ष्मस्थूलचिदचिच्छरीरकं परमात्मानं विदित्वा प्रत्यक्षसमानात्मकज्ञानेन विषयीकृत्यैवोपासकोऽतिमृत्युं मोक्षं प्राप्नोति, परमात्मज्ञानव्यतिरिक्तं कारणमयनाय निरतिशयनिरवधिकसुखस्वरूपाय मोक्षाय न भवति अर्थात् परमात्मसाक्षात्कारेणैव मोक्षो जायते न तु तदतिरिक्तेन कारणेन मोक्षो भवतीत्यर्थः श्रुतेः। अनया श्रुत्या अर्थात् इत्यनेकश्रुतिभिः एकस्यैव सर्वजगत्कारणपरमेश्वरस्य भगवतः श्रीरामस्य परिज्ञानादेवातिमृत्युसन्तरणं प्रतिपादितं भवतीति। "नान्यः पन्थाः" अनेन च वाक्येन मोक्षकारणान्तरस्य प्रतिषेध एव सूचितो भवतीति। "यतो वा इमानि" इमानि दृश्यादृश्यसाधारणानि गगनादीनि भूतानि, यस्मात् सर्वशक्तिसमन्वितसर्वज्ञात् परमेश्वरात् समुत्पद्यमानानि भवन्ति, उत्पद्य च यस्मिन् परमात्मनि समवस्थितानि भवन्ति तथा प्रतिसर्गसमये यस्मिन्भगवति महामहिमशालिनि प्रलीयमानानि भवन्ति तमेव परमात्मानं विजिज्ञासस्व एतादृशपरमात्मन एवोपासनां कुरु एतदेव ब्रह्म नान्यद् व्यतिरिक्तं ब्रह्मेति श्रुत्यर्थः। ब्रह्म वा इदमग्र आसीदिति इदं परिदृश्यमानं स्थावरजङ्गमात्मकं स्थूलं जगत् ब्रह्मैव कारणीभूतसूक्ष्मचिदचिच्छरीरकं ब्रह्मस्वरूपमेवासीदिति। "योह वै श्रीरामचन्द्रःस भगवानि"त्यादि यश्चायं भगवान् श्रीरामचन्द्रः साकेताधिपतिः स खलु

प्रकार से आनेवाली अनेक शंकाओं को हृदय में रखकर उन शंकाओं का निराकरण करने के लिए इस चतुर्थ समन्वयाधिकरण का उत्थान करते हुए वृत्तिकार चलते हैं, तत्तु समन्वयादिति। सूत्रस्थ जो तत् शब्द है उसका अर्थ है ब्रह्म और तु शब्द पक्ष का निराकरणपरक है, तब वह जगत्कारण सर्वशक्तियुक्त सर्वेश्वर परमात्मा का प्रतिपादन वेदान्त शास्त्र स्वकीयतात्पर्य के बल से

अद्वैतपरमानन्दः सकलहेयप्रत्यनीकनिरतिशयनिरवधिकपरमानन्दस्वरूपः सर्वेषां स्थावरजङ्गमानाम् आत्मा स्वरूपभूत इत्यर्थः । आनन्दो ब्रह्म परमात्मैवानन्दात्मकः । ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । यो हि समुपासकः समस्तजगत आधाररूपेण समस्तस्थूलसूक्ष्मचिदचिच्छरीरकतया परमात्मानं वेद विजानाति तमेव प्रपन्नो भवति स तत्स्वरूपस्तत्सायुज्य मवाप्नोतीत्यर्थः । "रमन्ते योगिनोऽनन्ते" इत्यादि यस्मिन्ननन्ते सर्वकर्तृस्वरूपे नित्यनिरतिशयनिरवधिकानन्दस्वरूपे चिदात्मनि परमात्मनि योगिनो निवृत्तैषणाः परमधामान्वेषिणः पुरुषधौरेयाः परमानन्दमहार्णवे निमग्ना भवन्तीति एतादृशानेक–कल्याणगुणगणविशिष्टो भगवान् परमात्मैव रामपदेनाभिधीयमानः प्रतिपादितो भवतीति रामतापनीयोपनिषदोऽर्थ इति । इत्याद्यनेकाः श्रुतयो भगवन्तं परमात्मानं श्रीराममेव प्रतिपादयन्त्यतस्तादृशराम एव समन्विता भवन्ति तादृशरामस्वरूपगुण विभूतीनां वर्णनमेवाङ्गीकुर्वन्तीति । एवम् "आत्मेत्येवोपासीत" इत्यादि वेदान्ता अपि उपासनाविधिं प्रयुञ्जाना भगवन्तं श्रीराममेव प्रतिपादयन्ति तत्रैव समन्विता भवन्तीति ।

अथ द्वितीयोऽप्यर्थोऽस्य सूत्रस्य तथाहि - "जन्माद्यस्य यतः" अनेन द्वितीयसूत्रेण यत इत्यत्र हेत्वर्थकपञ्चमीविभक्त्या ब्रह्मणि निखिलजगत्कारणत्वं प्रदर्शितम् , केवलं प्रतिज्ञामात्रेण कथितम् न च प्रतिज्ञामात्रे साध्यसाधकम् , तस्मात्तादृशप्रतिज्ञाया उपपादनायै हेतुदर्शनम-

करता है । यह सूत्रार्थ हुआ । अब इसके ऊपर वृत्तिकार संदेह को उपस्थित कर पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष द्वारा निर्णय करने के लिए कहते हैं ·तच्छास्त्र-प्रमाणकमित्यादि जिज्ञासा लक्षणप्रमाणद्वारा प्रमाणित जो ब्रह्म है, तादृश ब्रह्ममें शास्त्र प्रमाण संभवित है कि नहीं है ? अर्थात् वेदान्त शास्त्र से ब्रह्म प्रतिपादित होता है अथवा नहीं होता है ? एतादृश संशय होता है । विप्रतिपत्ति के बाद उपस्थित संदेहानन्तर पूर्वपक्ष के स्वरूप का उपस्थित करते हुए वृत्तिकार

ष्यावश्यकमिति हेतुजिज्ञासायां सत्यां हेतुरूपेण प्रकृतं चतुर्थसूत्रमिद-मुपन्यस्तम् "तत्तु समन्वयात्" इति। अत्र समन्वयपदम् व्यतिरेकस्या-प्युपलक्षणम् अन्वयश्च तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् तदभावे तदभावोऽन्वयव्यति-रेकाविमौ कारणताग्राहकौ द्वावपि भवतः। "जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादित-रतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराडि"ति भागवते भगवतो वेदव्यासस्य वचनान्तरात्। तथा चायमर्थः सूत्रस्य भवति, यथा मृत्तिकासत्त्वे घटसत्त्वं मृत्तिकाया अभावे घटो नोपलभ्यते इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां घटं प्रति कारणत्वं मृत्तिकायाः संपद्यते। एवं प्रकृतेऽप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां जगतोऽभिन्नो-पादानता रामात्मकब्रह्मणि सिध्यति, तथाहि—एतादृशजगत्कारणत्वे ब्रह्मणः कार्यमात्रे पदार्थमात्रे च व्यापकरूपेण समन्वयाद्भवत्येव "पादोऽस्य विश्वा भूतानि" इत्यादिशुक्लयजुर्वेदसंहितया कार्यमात्रं प्रति ब्रह्मणः श्रीरामस्यान्वयः प्रदर्श्यते। तथा "त्रिपादस्यामृतं दिवि" इति शुक्लयजुर्वेदसंहितावाक्येन च तस्यैव रामाख्यब्रह्मणो व्यति-रेकोऽपि प्रज्ञापितः। एवं "स भूमिं सर्वतस्पृत्वे"-ति शुक्लयजुर्वेद वाक्येन तथा "सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुति-मल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठती"-ति स्मृत्या च सर्वस्मिन्नेव स्थावरजङ्ग-मात्मके जगति ब्रह्मणोऽन्वयः प्रदर्शितः। एवम् "अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलमि"

कहते हैं कि—तत्र शास्त्रस्य प्रवृत्तिनिवृत्ती-त्यादि— शास्त्रमात्र का नियम है कि—वह प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति का ही वाचक होता है। ऐसा कहा भी हैं प्रवृत्ति र्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते नित्य अथवा जन्य जिसके द्वारा प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति उपदिश्यमान हो उसको शास्त्र कहते हैं। इससे फलित यह हुआ कि शास्त्र का प्रयोजन प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति कराना ही है, और ब्रह्म तो परिनिष्पन्न सिद्ध वस्तु है इसलिए वह एता दृश ब्रह्म शास्त्रप्रमाणक नहीं हो सकता है, अपितु जो कार्य पदार्थ है वही शास्त्रप्रमाणक है। एतादृश पूर्वपक्ष का अभिप्राय सिद्ध होता है।

-ति शुक्लयजुर्वेदीयवाक्ये''-असङ्गो ह्ययं पुरुष''-इति वाक्ये च तथा "असक्तं सर्वभृच्चैवे''-ति गीतावाक्ये च तस्यैव ब्रह्मणो व्यतिरेकोऽपि निर्धारित एव। एताभ्यां श्रुतिस्मृतिवाक्यप्रतिपादितान्वयव्यतिरेकाभ्यां ब्रह्मणि जगत्कारणत्वं व्यवस्थापितं भवति। एतच्च कारणत्वं न सांख्यवत् केवलमुपादानत्वलक्षणम्। न वा नैयायिकवत् केवलं निमित्तकारणतालक्षणं किन्तु ''प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधादि''ति–सूत्रानुमोदितमभिन्ननिमित्तोपादानतालक्षणमेव। ''एतत्सर्वं'' यथा सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन "इति श्रुतौ तथा ''प्रकृतिश्च प्रतिज्ञे''-ति सूत्रे एवम् "तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः "इति सूत्रे च विस्तरेण समर्थितं भविष्यतीति। एतच्च कारणत्वं त्रिवृत्कृतम् त्रिकादिपदार्थानां तत्तदीयघटादिकार्यजाते व्यापकरूपेण समन्वयस्य व्यतिरेकस्य च सर्वत्राव्यभिचरितरूपेण दर्शनेन कारणतानिश्चयो जायमानो दृश्यते। इति यथा दृष्टान्ते दृश्यते तथैव दार्ष्टान्तिकेऽपि सर्वगतत्वात्मकव्यापकतया सर्वजगत्समन्वयेन तद्व्यतिरेकेणैकत्र प्रधानतया समन्वितत्वेन हेतुना सर्वजगत्कारणत्वं ब्रह्मणि समुद्यत एवेति। अथ ब्रह्मणः सर्वत्र विद्यमानत्वेन अन्वयमात्रं भवति, ब्रह्मसत्त्वे कार्यसत्त्वम् न तु व्यतिरेको ब्रह्मणोऽभावे कार्याभावः

एतादृश पूर्वपक्ष के उत्तर में कहते हैं वृत्तिकार अत्राभिधीयते इति अर्थात् यथोक्त पूर्वपक्ष में यह सूत्र तत्तु समन्वयात् होता है जो हित वस्तु का प्रतिपादक होता है, उसको सूत्र कहते हैं। तो यह वेदान्त यद्यपि ब्रह्म परिनिष्पन्नवस्तु है, तथापि नित्यनिरतिशयस्वरूप है तो, एतादृश पदार्थ का प्रतिपादक होता है इस अभिप्राय से कहते हैं वृत्तिकार'' परिनिष्पन्नस्यापी–त्यादि, अर्थात् यद्यपि ब्रह्म परिनिष्पन्न है तथापि तादृश ब्रह्मभी नित्यनिरतिशयसुखात्मक होने से शास्त्रप्रमाणक होते ही हैं, क्योंकि-वेदान्त शास्त्र से परमानन्दस्वरूप ब्रह्म का भी व्याप्य रूप से अन्वय होता है। उपक्रमोपसंहार अभ्यास अपूर्वता फल अर्थवाद उपपत्ति अर्थात्

यतो ब्रह्मणो व्यापकत्वेन तद्व्यतिरेकस्य युक्तेरप्यसंभवादिति चेत्। अत्र प्राचीनाः यथा श्रुतिभिर्ब्रह्मणः प्रपञ्चसमानकमपि रूपं प्रदर्श्यते तथा प्रपञ्चविलक्षणरूपमपि द्विरूपस्य ब्रह्मणः श्रुतौ प्रतिपादनात् तत्र यद्रूपं ब्रह्मणः प्रपञ्चविलक्षणं रूपं यत् जगति नान्वेति तादृशरूपमेव ब्रह्मणोऽन्वयव्यतिरेकज्ञापकमिति कृत्वा समाधानं कुर्वन्ति। परन्तु नेदं तर्कसिद्धं समाधानम् इति तु समाधाने केवलं श्रद्धामात्रग्राह्यं श्रुतिगौरवमात्र साध्यं च। तस्मान्नेदृशो व्यतिरेकः साधीयान् किन्तु, अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कारणताया विनिश्चयो भवतीति नियमः सार्वत्रिकप्रायो भवन्नपि यत्र कारणमन्वयव्यतिरेकग्रस्तं भवति तत्रैवान्वयव्यतिरेकौ कारणताग्राहकौ यथा दण्डघटयोः, अत्र दण्डस्य क्वचित्सत्त्वं क्वचिदसत्त्वम् व्याप्यत्वात्, ततोऽत्र दण्डे कारणता अन्वयव्यतिरेकाधीना भवति किन्तु यत्र कारणं व्यापकं व्यतिरेकविरहितम्, न तत्र कारणता तादृशान्वयव्यतिरेकाधीना यथा सुखजीवयोर्यः कार्यकारणभावो न सोऽन्वयव्यतिरेकाधीनः, यतो जीवासत्त्वे सुखासत्त्वमित्याकारकव्यतिरेकस्यासम्भवात्, आत्मा तु व्यापकस्तदभावस्याभावात्। ततश्च सार्वत्रिको नियमः कार्यकारणभावव्यवस्थापकावन्वयव्यतिरेकाविति मन्येत तदा आत्मसुखयोरीशतदीयज्ञानयोश्च कार्यकारणभावः सिद्धो न स्यात्। तस्मात् कारणस्य व्यापकस्थले अन्वयमात्रम् कार्यकारणभावनियामकम् अन्यत्र तु अर्थात् व्याप्यकारणस्थले तदुभावन्वयव्यतिरेकौ तथा भवत इति न्यायानुमतः पन्थाः।

युक्तिलक्षण जो तात्पर्यग्राहक प्रमाण से समस्त वेदान्त का परब्रह्म नित्यनिरतिशयसुखात्मक पकळहेयप्रत्यनीकअनन्तावधिककल्याणगुणाकर श्रीरामचन्द्र साकेताधिपति में निराबाधरूप से समन्वय होता है। अर्थात् सब वेदान्तवाक्य श्रीभगवान् राम का बोधक होता है। वह समन्वय इस प्रकार से समझना चाहिये तथाहि—"सदेव सौम्येदमग्र आसीत" हे सौम्य श्वेतकेतु, यह परिदृश्यमान जड़चेतनात्मक जगत् संसार, अग्रे" उत्पत्ति से पूर्व कालमें

वेदान्तवाक्यानि तात्पर्यतः श्रीरामाख्ये ब्रह्मणि समनुगतानीत्यस्मिन्सूत्रे कथितम् , तत्र द्वित्रा आगमा युक्तयश्च प्रदर्शिताः । अतः परं तेषामेवानेकेषां वाक्यानां स्वरूपं दर्शयित्वा सर्वेषां तात्पर्यावधारणाय तथा स्मृतिपुराणादिवचनानां श्रुत्युपोद्बलकानां प्रदर्शनं कुर्वन् तेषामपि ब्रह्मण्येव तात्पर्यमिति दर्शयितुं श्रुतिसंमतयुक्तिमप्युपदर्शयितुमुपक्रमं कुर्वन्निवाह वृत्तिकारः "अयमत्र निर्णय" इति, अस्मिन् विचारप्रवाह पतितवस्तुतत्त्वे, अयं वक्ष्यमाणो निर्णयः विचारजनितफलप्राप्ति निश्चयः । तथाहि—"भोक्ता भोग्य प्रेरितारं च मत्वा" (संसारसागरान्तः पतितः स्वकृतशुभाशुभकर्मजनितविविधफलविशेषं भुञ्जानो भोक्ता जीवो भोग्यं संसारस्वरूपं तथा तत्र फलभोगकर्मणि प्रेरितारं प्रयोजकं सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानम् मत्वा ध्यानविषयतां संपाद्येत्यर्थः„ "पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा" (अयमल्पज्ञो जीवः स्वस्मात् पृथग्भूतम् कर्मणि प्रेरकमात्मानं निखिलजगदुपादानकारणभूतं साकेताधिपतिं मत्वा ज्ञात्वा, ध्यात्वेत्यर्थः) अर्थात् योऽयं परमात्मा स जीवविलक्षणो जीवानां स्वकीयकर्मणि प्रेरकश्च, स एव सर्वानेव जीवात् स्वस्वव्यापारे "सत् एक" अद्वितीय सजातीयद्वितीयरहित परमात्मस्वरूप ही था" यहाँ सूक्ष्म चित् अचित् है। शरीर जिसका एतादृश जो ब्रह्म वही सत् शब्द से प्रतिपादित होता है। एवं "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" जो चक्षुरादि करणों का करण है अर्थात् चक्षुरादि करणों में रूपादिग्राहकतासामर्थ्य रूप है उसी को ब्रह्म समझो न तु इन सबको ब्रह्म समझो, जिस को उपासना करते है । " तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" उस परमात्मा को जो कि - सकल जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं. तादृश परमात्मा को जानकर ही अतिमृत्यु मोक्ष को प्राप्त करता है परमात्मज्ञान से अतिरिक्त—अन्य कोई भी कारण मोक्ष के लिए नहीं है । " इस श्रुति से एक जो परमात्मा जगदुपादानकारण है उसी के ज्ञान से मृत्युसंतरण कहा गया है ।" नान्यः पन्थाः" दूसरा

युनक्ति न तु स्वतन्त्रो जीवः किमपि कर्तुमीश इति बुद्ध्या प्रकल्पयेत्यर्थः। तदेतत्समर्थितमाचार्यसार्वभौमेन श्रीमदनुभवानन्दाचार्येण–आचार्यसम्राट् श्रीश्रुतानन्दाचार्यानुगृहीतश्रौतसिद्धान्तविन्दुस्थं "विकारश्चरामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातश्च नैति। प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म।" इतिमहावाक्यभूतपद्यमुदाहरता। "नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्" (मृदोऽब्रवीदापोऽब्रवीदित्यादिश्रुत्या चेतनत्वेनाभिमतानां तयाऽनित्यानां जलादीनामपि नित्योऽविलुप्तसर्वविषयकज्ञानवान् तया नित्यत्वेनाभिमतानामाकाशादीनामपि नित्यः प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगिरूपः उत्पादविनाशरहितः एकः सजातीयद्वितीयरहितोऽपि बहूनां तिर्यङ्मनुष्यदेवादिभेदेन विभिन्नानामनेकेषां जीवराशीनां विभिन्नाननेकान् कमनीयपदार्थान् यः परमात्मा सर्वान्तर्यामिस्वरूपो विदधाति संपादयति, एकः पुरुष एकमपरं पुरुषमुपकरोतीति प्रायो लोकनियमः अयं तु परमात्मा लोकोत्तरलोकोत्तराप्राकृतिकानेकगुणवान् स्वमहिम्ना सर्वजीवानां सर्वानेव कमनीयान् पदार्थान् विदधाति विविच्य सम्यक् सम्पादयतीत्यर्थः। एवंभूतो विलक्षणशक्तिमन्तं परमात्मानं मत्वेति सर्वत्रा-

कोई मार्ग नही है. यह जो श्रुति का अवयव है उससे यह प्रतिपादित होता है कि–परमात्मज्ञानव्यतिरिक्त अन्य किसी भी कारण का निषेध होता है, अर्थात् यदि मोक्ष होता है, तो परमात्मा के ज्ञान से ही होता है, उपायान्तर से नहीं, इस अन्वय व्यतिरेक से परमात्मज्ञान में ही मोक्षकारणत्व व्यवस्थित होता है, अन्यत्र नहीं। (यद्यपि इस वाक्य से तो सिद्ध होता कि-ज्ञान ही मोक्षकारण है, तदतिरिक्त भक्ति प्रभृतिक मोक्षकारण नहीं है तथापि, 'भक्त्या त्वनन्यया लभ्यः" अनन्यभक्तिमात्रसे मैं लभ्य होता हूँ" इत्यादि वचन से दण्डचक्रादि न्याय से यहाँ मोक्षकारणता का ज्ञान में प्रतिपादन किया गया है। एवम् "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्र

नुषञ्जनीयमिति श्रुत्यर्थः। "स कारणं करणाधिपाधिपः" स परमात्मा कारणं सर्वेषां चेतनाचेतनवस्तूनां समुत्पादकः करणानां चक्षुरादीनां योऽधिपः स्वामी तत्तदधिष्ठातृदेवः तेषामपि परमात्मा अधिपो नियन्तेति शेषः। "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्" यः परमात्मा निखिलभूताधिपतिः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिवीमध्ये वर्तमानः पृथिव्या अन्तरो न तु तद्बहिः परन्तु यं परमात्मानं पृथिवी न वेद अयं परमात्मा ममान्तरे एव तिष्ठतीति, एवं रूपेण पृथिवी यं न विजानाति यस्य पृथिवी शरीरं शरीरमिव शरीरम् यः पृथिव्यां वर्तमानः पृथिव्या नियन्त्रणं करोतीति श्रुत्यर्थः। "य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्" यः आत्मा सर्वशक्तिमान् परमात्मा आत्मनि विज्ञानमयो जीवे तिष्ठन् वर्तमानः यस्य परमात्मनोऽयं जीवः शरीरम्" एवं क्रमेण सर्वश्रुतीनां यथासंप्रदायमर्थो ज्ञातव्याः। इत्यादिश्रुतयः" उपर्युक्ता इमाः श्रुतयः।" चिदचिदीश्वरस्वरूपाणि" तत्र चित्-चेतनवान् जीवोऽचित् चेतनागुणरहितो जड़स्वभावकः पृथिव्यादिपदार्थः ईश्वरः सर्वस्य शासको जगदाधारः, तत्र चित्पदार्थो द्विविधः स्थूलः सूक्ष्मश्च, सूक्ष्मः स्थूलश्चेति जडोऽपि द्विविधः परमात्मा तु सर्वविलक्ष-यन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म" यह जड़ चेतन संपूर्ण जगत् सर्ग के आदि में जिस महान् परमात्मा से उत्पन्न होता है, एवं उत्पन्न होकर जिस परमात्मा में अवस्थित रहता है, और प्रतिसर्ग (प्रलय) के समय में लीयमान हो जाता है उस परमात्मा को तूं भी जिज्ञासा करो, अर्थात् भक्तिप्रवृत्ति के द्वारा ही उसको जानो, वही ब्रह्म है।" ब्रह्म वा इदमग्र आसीन्नान्यत्किंचनमिषत्" यह परिदृश्यमान जड़ चेतन जगत् सृष्टि के पूर्व काल में ब्रह्मरूप ही था अन्य कुछ नहीं था।" "यो ह वै श्री रामचन्द्रः स भगवान अद्वैतपरमानन्द स्वरूप परमात्मा है।" "आनन्दो ब्रह्म" ब्रह्म परमानन्दस्वरूप है ब्रह्म

णोऽपि सर्वतादात्म्यं भजमानः सर्वानतिशेत इति। इत्येवं तेषां चिदचित् परमेश्वराणां यानि स्वरूपाणि तानि अस्य प्रतिपाद्येतिल्यबन्तक्रिययाऽनुपदं वक्ष्यमाणया सह संवन्धः, ततश्चैताः श्रुतयश्चिदचित् परमेश्वराणां रूपाणि प्रतिपादयन्तीत्यर्थः। "भोक्तृभोग्यनियन्तृतया पृथगुपवर्ण्य" इति तत्र भोक्ता जीवः भोग्यश्च जडपदार्थः, नियन्ता परमेश्वरः। एतेषां स्वस्वरूपं पार्थक्येनोपवर्ण्येति पूर्वेणान्वयः। तथा अचिद्वस्तुनः पृथिवीगगनादेः स्वरूपेण पणिामो भवति, चित्पदार्थस्यापि ज्ञानस्य संकोचविकाशाभ्यां परिणामो जायते न तु स्वरूपतः पृथिव्यादिवदित्यपि वर्णयित्वा नियन्तुः परमेश्वरस्य जडचेतनवत् न स्वरूपपरिणामो न वा जीववत् ज्ञानसंकोचविकाशात्मको वा परिणामो जायते, अपि तु परमेश्वरः सर्वदा सर्वपरिणामरहित इत्याकारकपरिणामराहित्यं भवतीति प्रतिपाद्य प्रतिपादनं कृत्वा, योऽयं जडचेतनपदार्थः स च परमात्मनः शरीरलक्षण इत्यपि ज्ञापयित्वा, ततश्च ब्रह्म परमात्मा चेतनावेद ब्रह्मैव भवति" ब्रह्म परमात्मा को तत्त्वरूपसे जानता है वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है अर्थात साकेताधिपति के सारूप्य को प्राप्त कर जाता है। एवम् रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि" इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते योगीलोग जिस अनन्त (अन्तरहित प्रागभावप्रध्वंसाभावरहित) नित्यानन्द चिदात्मामें रमण करते हैं वही यह भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ब्रह्म शब्द के वाच्य हैं।" इत्यादि पूर्व उदाहृत श्रुतिसमुदाय भगवान् श्रीरामचन्द्र परमात्मा का स्वरूप गुण विभूतियों का वर्णनपूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्र में हीं समन्वित होते है। अर्थात् तादृश भगवान् श्रीरामचन्द्र का ही प्रतिपादन करते हैं, और आत्मेत्पेवोपासीत" आत्मा अर्थात् परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्र ही उपासनीय हैं. इत्यादि उपासनाविधि का प्रतिपादन जो कियाा गया है, उससे भी यह सिद्ध होता है कि — सब वेदान्त भगवान् का ही प्रतिपादक है।

चेतनपदार्थयोः स्वरूपभूत आत्मस्वरूपतया जडचेतनयोरन्तर्यामी परमात्मा इति प्रतिपादयन्ति ताः श्रुतयस्तथा परमात्मा अनवद्यः सकल हेय-प्रत्यनीकोऽनवधिककल्याणगुणको नित्यः त्रिकालेऽपि सर्वथा बाध-विवर्जितः सर्वदैकरूपेण ऽजवस्थितो लीलामात्रेण संसारचक्रं परिभ्राम-यन् भक्तानुग्रहाय केवलं धृतशरीरो लोकप्रत्यक्षयोग्योऽपि भवतीति प्रतिपादयन्तीत्येताः श्रुतयोऽहर्निशमिति । एवं च सर्गस्य पूर्वकाले नाम रूपविभागायोग्यं यत् चिदचिद् वस्तु, तदेव शरीरं यस्य एतादृशः परमात्मा जडचेतनसकलप्रपञ्चस्याभिन्ननिमित्तोपादानकारणं भवति, न केवलं रूपतो भगवान् जगतः कारणमपि तु सूक्ष्मचिदचिद्भ्यां समन्वित एव कारणं भवति । तत्रापि न केवलं कुलालादिवत् कर्ता न वा कपाला-दिवदुपादानं किन्तु लूताकीटवत् स्वयमेव विशेषणांशं पुरस्कृत्योपादान कारणं पुरस्कृत्य च विशेष्यांशं च तत्वतया निमित्ते कर्ता कारको भवन्

इस प्रकरण का क्या तात्पर्य है ? इस बात को बतलाने के लिए वृत्तिकार कहते है -" अयमत्र निर्णय" इति, इस प्रकरण का यह निर्णय है कि-" पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा" यह जीवात्मा अपने से भिम्न उस आत्मा अर्थात परमात्मा को जान कर तथा वह परमात्मा सबका प्रेरयिता है, इस बात को जानकर "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" हे अर्जुन, परमात्मा भगवान् सबके हृदय में विराजमान होकर सबको प्रेरयिना होकर सबको प्रेरणा देनेवाले हैं, तथा" केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि" कोई एक देव विशेष जो मेरे हृदय में अव-स्थित है उनकी प्रेरणा से मैं कार्य करता हूँ, इत्यादि अनेक स्मृति, पुराण वचनों से भगवान् को सर्वनियन्ता को प्रेरयिता समझकर एवम् भोक्ता भोग्य प्रेरितारं च मत्वा" भोक्ता अर्थात् जीवात्मा भोग्य जड़ादिक पदार्थ को तथा प्रेरयिता परमात्मा को जानकर "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् नित्यत्वेन अभि-

कारणतां भजते। एतादृशं कारणमेवाभिन्ननिमित्तोपादानमिति कथ्यते। इविज्ञायिष्यति च श्रुतिं पुरतः कृत्वा प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधादिति सूत्रे भगवानानन्द भाष्यकारोऽमुमेवार्थं तत्सूत्रीयभाष्ये तत एव द्रष्टव्यम् ।"

एवं तदेव ब्रह्म यदा नामरूपविभाग्यं भवति स्थूलचिदचिद्वस्तु तदा कार्यमपि भवति अर्थात् एकमेव जगतः कारणमपि भवति तथा कार्यमपि भवति, एतावानेव विशेषो यत् सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टं तदा तु कारणम्, यदा च स्थूल-चिदचिद्विशिष्टं भवति तदा कार्यम्, एवं च सविशेषणे हीति न्यायेन कारणत्वकार्यत्वधर्मौ विशेषणे भवतः, ब्रह्मणि तु वैशिष्ट्यमात्रेणोभावपि धर्मौ ब्रह्मसंबन्धिनौ भवत इत्यभिप्रायेण ब्रह्मण एव कारणत्वं कार्यत्वं चेति बोधायनसिद्धान्तः। एतादृशं च ब्रह्मणः स्वरूपं न कपोलकल्पितमेव, सामानाधिकरण्यद्वारा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ऐतदात्म्यमिदं सर्वं(ग.६।८।७)-मित्यादिश्रुतिभिरेव स्वयं प्रतिपादितत्वादाचार्यपरम्परासिद्धत्वाच्च। ये तु श्रुतिसिद्धान्तप्रतिकूलास्ते तु सर्वथा असन्त एवेति ॥

मत जो आकाशादिकपदार्थ उन सबकी अपेक्षा से नित्य अर्थात् आकाशादिक पदार्थ जगत् में नित्यरूप से प्रसिद्ध हैं, परन्तु परमात्मा तो तदपेक्षया भी नित्य हैं, अर्थात् आकाशादिक में जो नित्यता है, सो आप्रलयान्तावस्थायित्वरूप चिरस्थेमलक्षण है, और परमात्मा में जो नित्यता है सो अनपेक्ष सार्वदिक नित्यता है, इसी नित्यता को अन्यलोग त्रिकालाबाध्यत्व कहते हैं और चेतनत्वेन अभिमत जो जीव उनका भी जो चेतन है, अर्थात् जीव की जो चेतना उसका संपादक जो है, तथा वह परमात्मा एक होकर सजातीयद्वितीयरहित होने से सहायक व्यक्त्यन्तरानपेक्ष होकर भी अनेको उपासकों का अनेक प्रकारक कमनीय वस्तु को जो बनाने वाले तथा देनेवाले हैं।" स कारणं करणाधिपाधिपः' परमात्मा संपूर्ण

अथ यदि जीवात्मनोर्भेदः स्वीक्रियते स्वरूपतः स्वभावेन च तदा एकस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति प्रतिज्ञा कथं संगता स्यात् यतो यदि मृत्तिका घटयोरभेदस्तदैव मृदो ज्ञाने जाते तदभिन्नो घटोऽपि विज्ञातो भवति, न तु सुवर्णे ज्ञाते मार्दो घटो विज्ञातो भवति, तथैव यदि जीवपरमात्मानौ परस्परमभिन्नौ कार्यकारणाभ्यां धर्मौ भवेतां तदैवैक विज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा समर्थिता भवेत् न तु जीवेश्वरयोर्भेदे इयं प्रतिज्ञा समर्थिता स्यादिति पूर्वपक्षिणामाशयमभिव्यञ्जयन्नाह वृत्तिकारः "न चैवं जीवपरयोरित्यादि" जीवपरयोर्जीवात्मपरमात्मनोर्यदि स्वरूपेण स्वभावेन च परस्परं भेदः समर्थितः "सर्वं खल्वित्यादि"-श्रुत्या तदा एकविज्ञानेन सर्वधिज्ञानप्रतिज्ञा या वेदान्ते विद्यते तस्याः समर्थनं कथं स्यात् न हि घटे विज्ञाते पटो विज्ञातो भवतोति पूर्वपक्षः। यथा जलदुग्धयोः स्वभावस्वरूपाभ्यां परस्परं विभिन्नयोरपि दुग्धपात्रपतितजलस्यदुग्धज्ञानेन ज्ञानं जातमेव भवति, तथैव प्रकृतेऽपि

जगत् का कारण है, और करण जो चक्षुरादिक आम्यन्तर तथा बाह्यकरण दण्डादिक, उसका अधिप स्वामी जीव उसका भी अधिप पालयिता प्रेरयिता है, "यः पृथिव्यां तिष्ठन्" जो पृथिवी के अभ्यन्तरमें रहता है। फिर भो पृथ्वी से अन्तर है जिसको पृथ्वी नहीं जान सकती है, जिस परमात्मा का पृथ्वो शरीर है, अर्थात पृथ्वी एक अवयव है।" य आत्मनि तिष्ठन्" यस्यात्मा शरीरम्" जो परमात्मा जीव में रहता, जिसका जीव शरीर है अर्थात् अवयव है। परमात्मा का अवयव है जड़ तथा चेतन, उसमें आकाशादिभेद से अनेक प्रकारका है, एवं नारकदेवमनुष्यादिभेद से जीव भी अनेक प्रकारके है, तथापि जीवत्वेन सकल जीव का एकरूप से संग्रह होता है तथा जड़त्वरूप से सकल जड़का संग्रह होता है। और ईश्वरत्वरूप से दोनों जड़ जीव का एकरूप से संग्रह होता है। यही विशिष्टाद्वैतवाद का स्तम्भ है।

कथं न स्यात् किं च नात्यन्तिको भेदो जीवपरयोः परस्परं कार्यकारण भावस्यापि स्वीकारोऽस्त्वित्याशयेन पूर्वपक्षस्य समाधानं कुर्वन्नाह वृत्तिकारः 'जीवेऽवस्थान्तरापत्तिरि'–त्यादि जीवस्य परिणामित्वेन पूर्वदोषस्याभावात्, तथाहि–जीव एकां देवाद्यवस्थां परित्यज्य कर्मवशान्मनुष्याद्यवस्थां भजमानः प्राप्नोत्येव परिणामं परिणामवत्त्वात्, तथा ब्रह्मणः कार्यत्वाच्च यथा मृत्तिकायाः कार्यं घटादि, तथैव परमेश्वरकार्यं च जीवराशिरपीति स्वीकारेण सर्वविज्ञानप्रतिज्ञायाः समर्थनसंभवात्। यद्यपि सर्वज्ञत्वाल्पज्ञत्वधर्माभ्यां परजीवयोर्भेदोऽपि चेतनावत्त्वधर्मेण तदुभयोरेकत्वस्यापि संभवात्। तथा जीवो न सर्वथा स्वतन्त्रोऽपि परमेश्वराधीनत्वेन तत्कार्योऽपि ॥

न चैवं यदि जीवस्य परमेश्वरकार्यत्वं मन्येत, तदा जीवो विनश्यति भावकार्यत्वादित्याद्यनुमानेन तस्य जीवस्य विनाशित्वं स्यात्, ततो बन्ध

इत्यादिश्रुतय" इत्यादि वृत्तिः" पृथगात्मानं प्रेरितारं च" यहाँ से लेकर" य आत्मनि तिष्ठन्" एतत्पर्यन्त श्रुति तथा स्मृतिपुराणादि वाक्य-समुदाय चित् जीवात्मा' अचित् जड़राशि, वह भी सूक्ष्म स्थूल भेद से दो प्रकारका है। इनका तथा ईश्वर सर्वनियन्ता का जो स्वरूप है उन सब का प्रतिपादन करते हैं। भोक्ता जीव भोग्य जडराशि और परमेश्वर के पृथक् पृदक् रूपसे उपवर्ण्य प्रतिपादन करके अचिद्वस्तु जड़ का स्वरूपतः परिणाम होता है। चिद्वस्तु का परिणाम स्वरूपतः नहीं होता है, किन्तु ज्ञान का संकोचविकाशरूप परिणाम होता है, अर्थात् जीव स्वरूपतः परिणामी नहीं है, किन्तु जब कीटपतंगादियोनि को प्राप्त करता है तब ज्ञानमात्र अल्प होता है। और जब मनुष्यदेवादियोनि को प्राप्त करता है, तब उसकी ज्ञान मात्रा अधिक होती है। उस रूप से ज्ञान संकोच और विकाश को प्राप्त करता हुआ परिणत होता है, और सर्वनियन्ता जो परमेश्वर सो उभय

मोक्षव्यवस्था कथमुपपादिता स्यात् कथं वा मनुष्यादिदेहकृतसुकृतदुष्कृतयोः फलं शरीरान्तरे भोक्ष्यते जन्यत्वेन विनाशित्वादित्याक्षेपकस्याशयं हृदि समाधाय समाधते वृत्तिकारः इयांस्तु विशेष इत्यादि संभवेत् त्वदीय आक्षेपो यदि जडवत् जीवस्यापि परिणामः स्वीक्रियेत, परन्तु यथा जडपदार्थः स्वरूपेण परिणतो भवति पूर्वावस्थां परित्यज्योत्तरामवस्थां भजमानः, किन्तु जीवे ज्ञानस्य संकोचविकाशात्मक एव परिणामो भवति। यथा गृहे वर्तमानस्य प्रदीपस्य प्रभा गृहव्यापिनी भवति, घटमध्यस्थितस्य प्रदीपस्य प्रभा तु घटमात्रव्यापिनी भवति, तदत्र प्रदीपेन भवति विलक्षणता, एवं जीवोऽपि यदा कीटपतङ्गादिशरीरमधितिष्ठति, तदा तदीयं ज्ञानं स्वल्पमिवाभाति, यदा च स एव मनुष्यदेवादिशरीरमाश्रित्यावतिष्ठते तदा तदीयं प्रतिबन्धकरहितं सत् अति-

प्रकारकपरिणामरहित है, उसका प्रतिपादन कर और चित् अचित् यह दोनों पदार्थ ब्रह्म परमात्मा का शरीर अर्थात् अवयव है। कार्य तदा कारण में तादात्म्य होता है, उस नियम से ब्रह्म को चिदचिदात्मक होने से चिदचित् का परमेश्वर अन्तर्यामी हैं एवं ब्रह्मस्वरूप नित्य है, सर्वदोषरहित है, उन सब वस्तु को पूर्वोक्त श्रुतिजाल प्रतिपदन करता है। ऐसा ब्रह्म ही कारण हैं, और कार्य भी है। सृष्टि के पूर्व काल में नामरूपविभागरहित सूक्ष्मचिदचिच्छरीरक जो ब्रह्म वह संपूर्ण जगत् का कारण है। और तब वही ब्रह्म नामरूपविभागयोग्य जो स्थूलचित् पदार्थ, उस से युक्त जो ब्रह्म है। सो कार्यपरिभाषा को प्राप्त करता हैं। यद्यपि एक ही पदार्थ कार्य होगा तथा कारण होता है, यह तो अनुभवविरुद्ध तथा युक्तिसंगत नहीं होता है, क्योंकि अव्यवहितपूर्वकालवृत्ति को कारण कहते हैं, और अव्यवहितोत्तरकाल वृत्ति को कार्य कहते हैं, तो एक ही पदार्थ तत्पूर्वकालावच्छिन्न होगा तथा तदनवच्छिन्न होगा सो असंभवित है, तथापि यद्रूपविशिष्ट ब्रह्म में कारणता है तद्रूपविशिष्ट में कार्यता नहीं है, कार्यतावच्छेदक तथा कारण

विस्तीर्णमिव भवति। एवं क्रमेण जीवीयज्ञानस्य संकोचविकाशमात्रं भवति. इति जीवधर्मस्य ज्ञानस्य संकोचविकाशलक्षणपरिणामेन ज्ञान धर्मिणो जीवस्यापि कथंचित् जायमान इव भवति न तु सर्वथा स्वरूपान्तरापत्तिलक्षणपरिणामो भवति जीवस्य । यथा घटावच्छिन्नस्य नभसो घटविनाशे विनाशो घटस्योत्पादे चोत्पाद इति व्यवहारो भवति न तावता आकाशस्योत्पादो न वा विनाशस्तथैव प्रकृते जीवधर्मस्य ज्ञानस्यैव संकोचविकाशौ भवतो न तु जीवस्य परिणामो भवति। अन्यथा जीवस्य स्वरूपान्यथाभावलक्षणपरिणामस्वीकारे "अजो नित्यः शाश्वतः" इत्यादिवाक्यानां का गतिः स्यादिति। एतदेव दर्शयति श्रुतिमुदाहरन्मूत्तिकारः "न जायते म्रियते" इत्यादि, अयं विपश्चित्

तावच्छेदक धर्म के भिन्न होने से एक में कार्यकारणभाव होता है। जैसेः- सर्पः स्वात्मना स्वात्मानं वेष्टयति" सर्प अपने से अपने को वेष्टित कर लेता है" यहाँ वेष्टन क्रिया :के प्रति वही सर्प कर्ता भी है, और करण भी है, कर्म भी होता है तो कर्तृत्वकरणत्वकर्मत्वप्रयोजक धर्म भिन्न रहता है । इसी प्रकार से यद्रूपविशिष्ट ब्रह्म में कारणता है, तद्रूपविशि में कार्यता नहीं है, किन्तु सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट में कारणता है, और स्थूलविशिष्ट में कार्यता है तो कार्यतावच्छेदक कारणतावच्छेदक धर्म को भिन्न होने से एक में भी कार्यकारणभाव होता है। जैसे एक ही द्रव्यता जाति सत्ता की अपेक्षा से अपर है और पृथिवीत्वादिकी अपेक्षा से पर है, उसीप्रकार से वही ब्रह्म जब सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट होता है तब कारणशब्द से व्यवह्रियमाण होता है सृष्टि के पूर्वकाल में, तथा सर्ग-काल में स्थूलचिदचिद्विशिष्ट होकर कार्य कहलाता है तो इस प्रकार से एक ही ब्रह्म कार्य भी कारण भी कहलाता है।, जैसे एक ही व्यक्ति अध्यापनक्रियाकाल में अध्यापकपदबोध्य होता है। तद्वत् प्रकृत में भी समझना चाहिये । परंतु इतना समझना चाहिए कि—"सविशेषणेन" इसन्याय से कार्यत्व कारणत्व स्थूल सूक्ष्म विशेषणांश

ज्ञानवान्, न जायते घटादिजडवस्तुवत् कदाचिदपि कारकव्यापारेण समुत्पद्यमानो न भवति, यथा घटो दण्डचक्रकुलालादिकारकसमुदायेन न जायते, तथाऽयं जीवोऽपि नोत्पादकसमवायिकारणादेरभावात् समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणैः कार्याणि जायमानानि भवन्तीति नियमः, परन्तु प्रकृते समानजातीयस्य कस्य चिज्जीवसमवायिकारणस्यानिर्वचनात् नोत्पाद्यते जीव इति । ननु अजायमानोऽपि प्रागभावो यथा घटे जाते विनष्टो भवति, तथाऽजायमानो जीवः कुतश्चित् कारणवशात्कदाचिद्विनष्टो भविष्यति । न चेष्टापत्तिः, जीवस्य विनाशित्वे में ही है विशेष्यांश में नहीं है, क्योंकि ब्रह्म एक है तथापि उभयसंन्धित होने के कारण से विशेष्यांश में भी कार्यत्वकारणत्व का उपचारमात्र ही होता है।

"एतादृक्स्वरूपमित्यादिवृत्तिः" एतादृशविलक्षण ब्रह्म के स्वरूप का सामानाधिकरण्यद्वारा सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ये परिदृश्यमान सब पदार्थ ब्रह्मस्वरूप हैं, इत्यादि श्रुतिके द्वारा प्रतिपादन किया गया है । अर्थात् अर्थ कुछ कपोलकल्पित नहीं है किन्तु श्रुतिप्रतिपादित है ।।

प्रश्न-यदि जीव और परमेश्वर स्वरूप तथा स्वभाव से यदि अत्यन्त भिन्न है तथा नित्य है, तब तो वेदान्त में प्रसिद्ध जो एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा हैं उसका उपपादन किस प्रकार से होगा । अर्थात् यदि जीव ब्रह्मस्वरूप होता तब ब्रह्मविज्ञान से ब्रह्माभिन्न जीव भी ज्ञात होता । जैसे मृत्तिका के ज्ञान होने से मृदभिन्न घट का ज्ञान होता है । यहाँ तो आपने ब्रह्म जीव में भेद मान लिया, तब ब्रह्मविज्ञान से ब्रह्मभिन्न जीव का तो ज्ञान नहीं होगा, और एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की प्रतीज्ञा समर्थितो नहीं होगी । क्या घट के विज्ञान से घटभिन्नपदार्थ विज्ञात होता है ? समाधान—यद्यपि स्वरूप तथा स्वभाव से जीवेश्वरमें भेद प्रतिभासित होता है, तथापि जीव परिणामो है, इसमें अवस्थान्तर को प्राप्त करने का स्वभाव

मोक्षाभावप्रसङ्गात् इत्थं च पूर्वयुक्त्या जीवस्य विनाशित्वेनेष्टसिद्धि-रित्याशङ्कां निवारयितुं श्रुतिराह "न म्रियते" अथं विपश्चिज्जीवः प्राग-भाववद्धटवद्वा विनाशात्मकमरणक्रियामपि नानुभवति, तथात्वे जन्मा-न्तरानुभूतवस्तुनः स्मरणादीनां व्यक्तिविशेषे दर्शनेन तदनुपपत्तिप्रसङ्गात् एवं गीतादिवचनान्यपि जीवस्य नित्यताप्रतिपादकानि । एवं सूत्रका-रोऽपि जीवस्य नित्यतामेव प्रतिपादयति । अतो जीवस्य स्वरूपेऽन्यथा-भावो न भवति केवलं जीवधर्मज्ञानस्य संकोचविकाशावेव भवतः । अतो न कोऽपि श्रुतिविरोधो न वाऽनुभवतर्कादिविरोधो वा भवतीति । संप्रति प्रकरणार्थमुपसंहरन्नाह वृत्तिकारः—"इत्थं च परस्ये"—त्यादि, इत्थं च यथोक्तप्रकारेण परस्परनिखिलचेतनाचेतनजगदुपादानस्य सर्वशक्तिमतः सर्वेश्वरस्य हेयप्रत्यनीकनित्यनिरतिशयाप्राकृतगुणगणाकरस्य भगवतः

है, और वह जीव में परिणाम हैं, सो परमकारण से उत्पन्न होता है तो तादृशपरिणामविशिष्ट जीव भी ब्रह्म का कार्य कहलाता है। अतः कारण जो ब्रह्म है, उसके ज्ञान होने पर कार्यरूप जो जीव है उसका भी ज्ञान हो जाने से एक विज्ञान से सब विज्ञान की प्रतिज्ञा का बाधरूप दोष नहीं होता है। यदि इस प्रकार से जीव को जन्म होने से अनित्यत्व होता है, तो स्वर्ग मोक्षादि व्यवस्था का बाध होता है, और कोई भी दार्शनिक विचार वाले व्यक्ति जीव को अनित्य नहीं मानते हैं।" एवं श्रुति तथा सूत्र में जीव की उत्पत्ति का निराकरण किया है, सो तो जीव को जन्य-मानने से वह व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जायेगी। इस शंका का निराकरण करने के लिए वृत्तिकार कहते हैं कि— इयांस्तु विशेष इत्यादि। जीव को जन्यता मे इतनी विशेषता है कि - जिस प्रकार जड पदार्थ स्वरूप से परिणाम को प्राप्त करता है, अर्थात् पूर्व जो आकार उसको सर्वथा परित्याग कर- अभूतपूर्व अपर आकार को प्राप्त कर जाता है किन्तु जीव में एतादृशस्वरूपपरिणाम नहीं होता है, अर्थात धर्मी के अंश में परिणाम नहीं

श्रीरामचन्द्रस्य ब्रह्मणः स्वरूपं स्वरूपविभूतिलीलादिकम् तथा तादृशस्य भगवतः प्राप्तेरुपायं भक्तिप्रपत्त्यादिकम् अभिदधत् प्रतिपादयत् वेदान्तशास्त्रं तस्मिन् सकलतन्त्रस्वतन्त्रे सर्वात्मनि श्रीराम एव कल्प्येत संपूर्णरूपेण समन्वेति समन्वयं प्राप्नोति। तदेव वेदान्तशास्त्रस्य शास्त्रत्वं यत् श्रीमति भगवति श्रीरामे समन्वयं प्राप्नोतीति संक्षेपः ॥

इति समन्वयाधिकरणम् ।

इति जगद्गुरु–श्रीरामानन्दाचार्य– रामप्रपन्नाचार्य–योगीन्द्रकृतस्य श्रीरघुवरीय–वृत्तिविवरणस्य चतुर्थंसमन्वयाधिकरणम् ॥ ४ ॥

इति चतुर्थसूत्रवृत्तेर्विवरणम्

होता है, किन्तु जीव का जो धर्म है ज्ञान तदंश में फेरफार हो जाता है जब वह जीव जघन्य योनि को प्राप्त करता है, तब उस का ज्ञान संकुचित हो जाता, और वही जब देव-मनुष्यादि–शरीर को प्राप्त करता है तब उसमें ज्ञान का विकाश हो जाता है। इसलिए वृत्तिकार ने कहा है – अचेतन के समान जीव में स्वरूप-परिणाम नहीं होता है अपितु ज्ञान के संकोच-विकाश रूप अन्यथाभावलक्षण परिणाम होता है जो कि–धर्मस्थित परिणाम है न तु धर्मी जीवका परिणाम है। अतएव "न जायते म्रियते वा" इत्यादि–श्रुति जीव के स्वरूप के अन्यथाभावलक्षणपरिणामात्मक उत्पत्ति का निवारण करती है, न तु धर्मांश में होनेवाला संकोचविकाशलक्षणपरिणाम का निराकरण करती है। एतावता ही जीव में नित्यता का समर्थन होता है। इस प्रकार से परब्रह्म के स्वरूप को तथा ब्रह्मप्राप्ति के उपाय का प्रतिपादन करता हुआ शास्त्र संपूर्णरूप से ब्रह्म में ही समन्वित होता है, अर्थात् यह शास्त्र ब्रह्मका प्रतिपादक है, यह सिद्ध हुआ ॥ ४ ॥ इति समन्वयाधिकरणम् । समाप्ता च चतुःसूत्री ॥४॥

॥ अथेक्षत्यधिकरणं पञ्चमम् ॥

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥१।१।५॥

(रघुवरीय-वृत्तिः)

अनया च ब्रह्ममीमांसया समन्वयाविरोधसाधनफलाख्यैश्चतुर्भिरध्यायैः परमपुरुषार्थावाप्तयेऽखिलहेयप्रत्यनीकानन्त-कल्याणगुणाकरस्य प्राप्यस्य ब्रह्मणः श्रीरामस्य स्वरूपं मोक्षो-पायो मोक्षाख्यं फलञ्चाभिधीयते (तत्र चतुःसूत्र्या वेदान्तशास्त्रानारभ्यत्वशङ्कामपाकृत्य ब्रह्मणो जिज्ञा-

---

योगिनः परमानन्दवोधलक्षणलक्षितम् ।
यमाश्लिष्यन्ति सर्वज्ञं तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥१॥
विहाय कार्यतावोधं सिद्धे ब्रह्मणि मानना ।
पुरुषार्थस्वरूपे च वेदान्तानां प्रसाधिता ॥२॥

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासे" ति प्रथमसूत्रेण ब्रह्मजिज्ञासां प्रतिज्ञाय, "जन्माद्यस्य यत" इति सूत्रेण प्रतिज्ञातब्रह्मणो लक्षणाशङ्कां निराकृत्य;

सारबोधिनी— सर्व प्रथम ब्रह्मजिज्ञासा का कथन कर चतुर्थ सूत्र से सब वेदान्त वाक्यों का ब्रह्म में ही समन्वय का प्रतिपादन करते हुए चतुः सूत्री के प्रतिपादन द्वारा सब वस्तु को वतलाया। जो कुछ भी पदार्थ यहाँ प्रतिपादित हुआ है, उसी वस्तु को प्रमाण तथा सद्युक्ति के द्वारा विस्तार पूर्वक चार अध्यायवाला प्रकृत इस शास्त्र में प्रतिपादन करेंगे। प्रतिपादनीय पदार्थ का लक्षण प्रमाण का प्रतिपादन प्रथमतः होना चाहिये तथा परमत का निराकरण भी होना चाहिये, अन्यथा जवतक परमत का निराकरण नहीं हो जाता है, तवतक स्वाभिमतप्रस्तुत की सिद्धि नहीं होगी। अतः प्रतिपादनीय विषय के विचार से पहिले परमतका निराकरण करने के लिए यहाँ समन्वय--विरोध का परिहार—साधक प्रमाण और फल को एक एक अध्याय करेंगे। उसमें प्राथमिक समन्वयाध्याय में चार पाद से समस्त वेदान्त को चिद-

सनलक्षणे तत्र प्रमाणं तत्रैव च समेषां वेदान्तानां समन्वय इति दर्शितम्। इदानीमवशिष्टेनादिमपादेन जगत्कारणत्वं ब्रह्मण एव सम्भवति न त्वन्यस्येति विचार्यते। तत्रानेनेक्षत्यधिकरणेन सांख्याभिमतप्रधानस्य जगत्कारणत्वं न सम्भवतीत्येतदुच्यते। अत्र "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' तदैक्षत बहु स्याम्प्रजायेय" (छा० ६।२।१।३) इत्यादिकारणवाक्ये सत्पदवाच्यं प्रधानं भवितुमर्हति नवेति संशयः।

तृतीयसूत्रेण "शास्त्रयोनित्वादि"–त्यनेन तस्मिन् ब्रह्मणि शास्त्रप्रमाणकत्वमभिधाय, "तत्तु समन्वयादि"–त्यन्तसूत्रसमुदाये सर्वज्ञसर्वशक्तिमति जगदुत्पत्तिस्थितिनाशकारणे ब्रह्मणि वेदान्तानां समन्वयोऽपि प्रदर्शितः। तत्र परमार्थतो ब्रह्मणि जगत्कारणता प्रदर्शिता। ननु ब्रह्मण्येव कारणता प्रदर्शिता, तादृशकारणता तु तदन्यस्मिन्नपि संभवति। तत्र सन्देहो जायते यत् जगतः स्थावरजङ्गमस्य कारणता चेतनेऽचेतने वा? तत्र चिच्छरारक ब्रह्मस्वरूप के प्रतिपादन में तात्पर्यहै, यह कहेंगे तथा स्पष्ट ब्रह्मस्वरूप के प्रतिपादन में तात्पर्य है, यह कहेंगे तथा स्पष्ट ब्रह्मलिंगक वाक्यों का विचार कर जगत् का कारण रूप से सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्स्वरूप से सगुण ब्रह्म ही वेदान्तवेद्य है इस बात को व्यवस्थित करेंगे उसी सगुण ब्रह्म का लक्षण तथा प्रमाणादि के द्वारा विवेचन पूर्वक समर्थन किया गया है। प्रकृतमें जगत्कारणत्व जो ब्रह्म का लक्षण किया गया है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि–जगत् का कारणरूपता तो प्रधान परमाण्वादिक में भी संभावित है? एतादृश पूर्व पक्ष का खण्डन करने के लिए पंचम सूत्र का उपक्रम वृत्तिकार करते हैं–"अनया च ब्रह्ममीमांसया" इत्यादि, इस ब्रह्ममीमांसा ब्रह्मविचारशास्त्र से समन्वयाध्याय अविरोधाध्याय साधनाध्याय और फलाध्यायनामक चार अध्यायों से परमपुरुषार्थलक्षणफल को प्राप्ति के लिए अखिलः समस्त जो हेय गुण उसका विरोधि जो अनन्त कल्याण गुण अर्थात् संख्यातीतगुणनिकर का आकर समुद्र स्वरूप जो कि स्वभावतः प्रत्येक प्राणियों से प्राप्त-

तत्र त्रिगुणत्वेन परिणामित्वेन च प्रधानस्यैव जगत्कारणत्वं न त्व परिणामिनो ब्रह्मण इत्यत्र वाक्ये सत्पदवाच्यं प्रधानमेवेति पूर्वः पक्षः। अत्राभिधीयते—एतच्छ्रुतिवाक्यं न प्रधानमभिधत्ते। यतस्तत्र सङ्कल्पार्थकस्येक्षति-पदस्य श्रवणात्। सङ्कल्पश्च चेतनस्य धर्मो न तु जडस्य प्रधानस्येति ॥५॥

विशेषकारणस्याभावे वादिनां विप्रतिपत्तेः सन्देहो जायते। तत्र प्रधानस्याचेतनस्यानुमानसिद्धस्यैव जगदुपादानकारणतां समर्पयन्ति वेदान्ता इति सांख्याः। तत्र जीवव्यतिरिक्तपरमेश्वरात्मकचेतनेनाधिष्ठिताः पृथिवीजलतेजोवायवीयाः परमाणवो जगदुपादानमिति काणादाः। अभाव एव निखिलजगदुपादानकारणमिति बौद्धाः। स्वभाव एव सर्वस्योपादानमिति स्वभाववादिनः। काल एव सर्वोपादानमिति कालवादिनः। अनिर्वचनीयानाद्यविद्यया शक्तिमच्चेतनं जगदुपादानमिति केचन।

ध्य है, एतादृश पर ब्रह्म भगवान् श्री रामजी का स्वरूप—मोक्ष, मोक्ष का उपाय तथा मोक्षाख्य फल का भी कथन करेंगे। उसमें सबसे पहिले चतुःसूत्रों से वेदान्तशास्त्र की अनारम्भ्यत्व की जो शंका, उस शंका का निराकरण करके ब्रह्मकी जिज्ञासा ब्रह्मका जगदुपादानादिलक्षणकारणत्व ब्रह्म में प्रमाण और संपूर्णवेदान्तवाक्यों का ब्रह्ममें ही समन्वय होता है, इन सब बातों को बतलाया गया है। अवशिष्ट प्रथम पाद से ब्रह्म में जगत्करणत्व हो सकता है, अथवा नहीं हो सकता है, इत्यादिरूप से विचार किया जाता है। अर्थात् अवशिष्ट प्रथम पाद से जगत् जो स्थावरजंगमात्मक है, तादृश जगत्कार्य के प्रति कारणता जोकि अभिन्नोपादानता लक्षण है तादृश कारणता तो ब्रह्म में ही है, न तु प्रधानादिक में जो कोई भी जगत्कारणता प्रधान में मानते हैं, सो भी तो तादृशकारणतापरिणाम्युपादनता मात्र मानते हैं, और जो जीव को कारण मानते हैं, वे भी केवल निमित्त

सगुणं ब्रह्म श्रीसीताधिपतिरेव स्थावरजङ्गमात्मकजगत उपादानकारणमिति वेदान्तरहस्यवेदिनो श्रीबोधायन-रामानन्दीयमतावलम्बिनः। तदेवमनेकप्रकारकविप्रत्तिपत्त्या संशये सति तत्र न ब्रह्मणि नोपादानता संभवति ज्ञानक्रियाशक्तिरहितत्वात्, तथा ब्रह्मणोऽपरिणामित्वादेकरूपवत्त्वाच्च त्रिगुणात्मके परिणामिनि प्रधाने तादृशशक्तेः संभवात्। यद्यपि साम्यावस्थायां प्रधानेऽपि ज्ञानक्रियादयो न भवन्ति तथापि अव्यक्तेन शक्त्यात्मना संभवत्येव तत्। तथा च प्रधानमेव सांख्यैरनुमानकल्पितं सर्वज्ञं सर्वशक्तिसमन्वितं च न तु ब्रह्म, यद्यपि ब्रह्मणि स्वरूपचैतन्यं भवति, तथापि तत्स्वरूपचैतन्यं जीववदनुपयोग्येव। न च स्वरूपचैतन्ये कर्तृत्वं, तस्याकार्यत्वात् कार्यत्वे तु सर्वदा न सर्वज्ञता, कार्यत्वस्याकस्मिकत्वात्। भोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थद्वयप्रयुक्तानादिप्रधानपुरुषसंयोगनिमित्तमहदहंकारादिक्रमेण चेतनस्यापि चेतनेनानधिष्ठितस्यापि प्रधा-

कारणता की ही शंका करते हैं; किन्तु अभिन्ननिमित्तोपादानता तो नहीं है, अचेतन तथा अल्पज्ञ होने से इन सब बातों का विचार होता है। उसमें भी इस ईक्षत्यधिकरण से प्रधान को जो कि—सांख्यमतकल्पित सत्त्वरजस्तमोलक्षण गुण का केवल साम्यावस्थारूप है। तादृशप्रधान को जगद्रूप कार्य के प्रति कारणता नहीं हो सकती है. इस बात का विचार करते हैं। यहाँ "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति" हे सोम्य श्वेतकेतु! यह परिदृश्यमान सूक्ष्म स्थूल स्थावर जंङ्गम जगत् सृष्टि के पूर्व में सजातीय द्वितीयरहित एक अद्वितीय सत्स्वरूप परमात्मा तादात्म्यापन्न था। जैसे फलितपुष्पितवृक्षनिकर अभिव्यक्ति अवस्था के पूर्वकाल में बीज के साथ ही तादात्म्यापन्न रहता है, बीज से भिन्न रूप में नहीं देखने में आता है, तद्वत्—उस सदात्मककारण ने जो कि चेतनातिरिक्त नहीं है उसने ईक्षणात्मक संकल्प किया कि—एक मैं अनेक रूप से अभिव्यक्त होऊं। यह जो जगत् के प्रति कारणताबोधक वाक्य है उस

नस्य प्रतिक्षणपरिणामिनः प्रधानस्य संभवत्येव परिणामरूपः सर्गः। अचेतनमपि वस्तु चेतनेनानधिष्ठितमपि पुरुषार्थसंपादनाय प्रवर्तमानं भवतीति दृश्यते, यथा वत्सविवृद्धयर्थमचेतनमपि क्षीरादिकं प्रवर्तते। तथा "तदैक्षत बहु स्यामि"-त्याद्यागमोऽपि अचेतनेऽपि चेतनवदुपचारात् स्वकार्योन्मुखतामादर्शयति। तथा "ता आप ऐक्षन्त तत्तेज ऐक्षत" इत्यादि वचनमप्यौपचारिकमेव। "अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य" इत्यत्रापि जीवात्मत्वं जीवार्थकारितया प्रधानस्य सांख्यपरिकल्पितस्यैव कथनं करोति। एवं 'तत्वमसी'-त्यागमोऽप्यौपचारिक उपासनापरको वा। एवं स्वमपीतो भवतीति श्रुतिरपि जीवस्य स्वकीये प्रधाने सुषुप्तावस्थायामप्ययं दर्शयति, यतः प्रधानावयवतमोगुणस्योदये जीवो निद्राणस्तमसीव निमग्नो भवति, तदुक्तम्—"अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रे"-ति। एवं सर्वज्ञं प्रक्रम्य श्वेताश्वतरमन्त्रेऽपि "स कारणं करणाधिपाधिपः" इत्या-

वाक्य में सद्वाच्य ब्रह्म नहीं है, किन्तु प्रधान ही सत्पदवाच्य है, एतादृश सन्देह वादिप्रतिपत्ति के द्वारा उपस्थित होता है। अर्थात् प्रकृत ब्रह्म में कारणता बोधक है?, अथवा सांख्याभिमत प्रधान में कारणता का बोधक है?।

एतादृश संशय में पूर्वपक्ष होता है कि—प्रधान त्रिगुण है, तथा परिणामी है, इसलिये प्रधान को ही जगत् के प्रति कारणता है, न तु स्वरूपतः परिणामरहित ब्रह्म में कारणता है। अतः कारणवाक्यघटकसत्पद का वाच्य प्रधान ही है यह पूर्वपक्ष होता है। यहाँ पूर्वपक्ष का अभिप्राय यह होता है कि—स्वतन्त्र रूपसे सांख्यशास्त्र में प्रतिपादितगुणत्रययुक्त प्रधान में ही जगत्कारणत्व युक्त है, किन्तु ब्रह्म में नहीं। क्योंकि ब्रह्म तो किसी भी जन्य धर्म का आश्रय नहीं होने से अपरिणामी है। प्रधान तो अचेतन है, परिणामी नित्य है, और एक है। "सदेव सौम्येदमग्र" इस श्रौतकारणवाक्य में इदम् पद से प्रसिद्ध अचेतन त्रिगुणात्मक कार्यसमुदाय का निर्देश कर उसी को स्थूलअवस्थारहित को सद्रूपत्व का प्रतिपादन किया गया है सदासीत् पद

दिकः प्रधानाभिप्राय एव । प्रधानस्य पूर्वयुक्त्या सर्वज्ञत्वं सर्वज्ञानवत्त्वरूपं प्रतिपादितम् । तस्मादचेतनं प्रधानमेव सर्वजगत उपादानम्, न तु परमाणवोऽभावादि न वा चेतनं ब्रह्म, तस्य गुणक्रियादिधर्मैः स्वरूपेण वाऽपरिणामित्वादित्यादिपूर्वपक्षं मनसि निधाय तदपाकरणाय वैयासिकिः पञ्चमसूत्रमवतारयति । 'ईक्षतेर्नाशब्दमिति । अशब्दमर्थात् अनुमानोपनीतं सांख्यैः प्रकल्पितं स्वकीयपरिभाषया परिभाषितं सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थात्मकं प्रधानं न जगतः स्थावरजङ्गमात्मकस्योपादानकारणम् कुतः ? ईक्षतेः 'तदैक्षते'-ति श्रुतौ ईक्षति -धातोः श्रवणात् अर्थात् स एव जगतः कारणं यस्मिन् ईक्षतिः संकल्पो विद्यते स च संकल्पवान् भगवान् सर्वेश्वर श्रीसाकेताधिपतिरेव स एव कारणं न तु प्रधानं कारणं यतः स चेतनस्तस्मिन् ईक्षणात्मकसंभवात् प्रधानस्य तु चेतनाराहित्येन तदसंभवात् । अर्थात् 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत् तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय'—इत्यादि से और उस एक कारणरूप प्रधान के विज्ञान से प्रधान का कार्यरूप समस्त जगत् का विज्ञान होता है, यह जो आगे कहा जाएगा, उसका भी सामञ्जस्य घटता है । अत एव अन्यत्र अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाजनयन्तीं सरूपाः" इत्यादि रूप से स्पष्ट ही प्रधान को ही जगत् का उपादान कारणता का प्रतिपादन किया है । उस में सत्वगुण के अंश से शुक्ल सुखमय प्रजा, रजोंश से लोहित प्रजा, और तमोगुणांश से कृष्ण प्रजा को पैदा करती है, यह अर्थ होता है श्वेताश्वतरीयवाक्य का । प्रकृतिशब्दवाच्य वह प्रधान सर्ग के प्रारंभ काल में महदहंकारादिक्रम से परिणत होता है, उसी को चतुर्विंशतितत्त्वात्मक कहते हैं । ईश्वरकृष्ण ने भी कहा है "मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त षोडकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ।" प्रधान को जगत्-कारणता मानने पर रजोगुण तथा सत्त्व गुण के योग से क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति भी होती है । क्योंकि—ज्ञान जो है, सो सत्त्व गुण का धर्म है । "सत्वात्संजायते ज्ञानम्" सत्त्वगुण से

सृष्टिवाक्येषु जगत्कर्तृकृतस्येक्षणस्य संकल्पापरनामकस्य श्रवणेन चेतनात्मककर्तृकत्वमेवेक्षणस्यानुभवसिद्धत्वेन चेतनलक्षणस्य ब्रह्मण एव जगदुत्पत्त्यादिकं प्रति कारणत्वं स्थितं भवति न त्वचेतनस्य प्रधानस्य जगत्प्रति कारणत्वं स्वातन्त्र्येण भवति परमपुरुषपराधीनतया तु तस्य प्रधानस्य सहकारिकारणत्वं भवत्येव। तदधीनत्वादर्थवदिति "अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतदि"–त्यादिसूत्रश्रुतिस्थानन्दभाष्यानुसरणात् प्रधानस्य चेतनभिन्नस्य कारणत्वं भवत्येवेति सूत्रार्थः ॥

तदेतत्सर्वं संक्षेपविस्तरमावेदयितुं वृत्तिकार उपक्रमते "अनया च ब्रह्ममीमांसया" इत्यादि इदं च ब्रह्मविचारशास्त्रं निरतिशयसुखलक्षणफलोपदेशकत्वेन शास्त्रपदप्रतिपाद्यं भवति॥ शास्त्रत्वं हितशासनादिति। तदेव शास्त्रं समन्वयाविरोधसाधनफलाख्येनाध्यायचतुष्टयेन विभक्तम्। तत्र प्रथमेऽध्याये चत्वारः पादाः एवं, द्वितीये तृतीये चतुर्थेऽपि, तत्र प्रथमे पुनः सर्ववेदान्तवाक्यानां स्पष्टास्पष्टब्रह्मलिङ्गकानां चेतने परमकारणे समन्वयो दर्शितः। द्वितीयेऽध्याये मतान्तरविरोधः परिहृतो भविष्यति। तृतीये तु प्राप्यस्य साकेताधिपतेः प्राप्तिमार्गः प्रतिपादयिष्यते, चतुर्थे

ज्ञान समुत्पन्न होता है, ऐसा भगवान् का वाक्य है। "सत्वाद्रजस्तमस्सी-अभिभूय प्रवृद्धसत्वगुणाज्ज्ञानेन्द्रियेषु विशदं ज्ञानं सञ्जायते" (रजोगुण तथा तमोगुण को दवाकर प्रवृद्ध सत्व गुण से ज्ञानेन्द्रियोंमें विशद ज्ञान उत्पन्न होता है) इस गीतावाक्य की अर्थचन्द्रिकानामक विशदार्थगर्भकटीका में महामहोपाध्यायजगद्विजयी जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यने उक्त विवरण लिखा है, विस्तारपूर्वक वहीं द्रष्टव्य है। यह जो सत्त्व गुण है प्रधानावस्थामें भी वर्तमान है, इसलिए अचेतन भी प्रधान को सर्व सत्त्वसर्वशक्तिमत्त्व उत्पन्न होता है। सत्व गुण स्वयं यद्यपि क्रियारहित होने से प्रकाशस्वरूपज्ञानात्मकवृत्ति का उत्पादक नहीं होता, तथापि चलायमान रजोगुण के संबंध से ज्ञानोत्पादक होता है और तमोगुण आवरक तथा

तादृशसाधनेन कीदृशं फलं भवतीति विचारयिष्यतीति। एभिश्चतुर्भिरध्यायैः प्रकरणविशेषैः पुरुषार्थप्राप्तये नित्यनिरतिशयपरमानन्दलक्षणमोक्षात्मकफललाभाय समस्तहेयगुणानां प्रत्यनीकाः, अर्थात् प्रकृतिजनितदुःखसाधनानां विरोधिनो येऽनन्ताः संख्यातीताः कल्याणगुणास्तेषामाकरस्य समुद्रसदृशस्य भक्तप्रपन्नैः प्राप्तुं योग्यस्य ब्रह्मणः श्रीसाकेता-धिपतेर्भगवतो रामचन्द्रस्य यत् स्वेतरविभिन्नमप्राकृतिकसर्वान्तर्यामिस्वरुपम्, तथा मोक्षस्य प्रापकमर्चिरादिमार्गविशेषः तथा प्राकृतिकबन्धनविवर्जितं सायुज्यादिलक्षणान्यतमात्मकमोक्षफलं चोच्यमानं भवतीति। तत्रापि चतुः सूत्र्यन्तप्रकरणेन वेदान्तशास्त्रस्याऽऽरम्भः कर्तव्यो नवेति संशयानन्तरं पूर्वोत्तरपक्षाभ्यां वेदान्तशास्त्रस्यारभ्यत्वम् तथा प्रथमसूत्रेण ब्रह्मणो जिज्ञास्यत्वम्, द्वितीयसूत्रेण जिज्ञास्यस्य ब्रह्मणो लक्षणदोषराहित्येन लक्षणं दर्शयित्वा, तृतीयसूत्रेण ब्रह्मणि वेदान्तशास्त्रस्य प्रामाण्यमुपदर्श्य चतुर्थसूत्रेणाकार्यपरकाणामपि वेदान्तानां सिद्धस्वरूपे परब्रह्मणि समन्वय आक्षेपप्रतिक्षेपाभ्यां समाहितः। इतः परं पञ्चमसूत्रादारभ्येदमीयादिपदान्तप्रकरणेन ब्रह्मण एव चेतनस्य

गुरुरूप होने से सत्त्वगुण तथा रजोगुण को किसी स्थल में प्रवृत्त कराता हुआ किसी स्थल में निवृत्त कराता हुआ नियमित करता है। यह प्रवृत्त्यादिककार्यद्वारा अनुमित होता है, और ब्रह्म में तो सत्त्वादिक कोई भी धर्म नहीं रहता है। इसलिए ब्रह्म में क्रियाशक्तिज्ञानशक्तिमत्त्व नहीं है, न वा जगत् की सृष्टि संहार शक्ति ही हो सकती है। और प्रधान में तो तीनों प्रकार का गुण है, इसलिए ज्ञानक्रियाशक्तिमत् होने से जगत्सृष्टिस्थितिविनाशकर्तृत्व होने में कोई विरोध नहीं होता है। अत एव "प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः" इस वाक्य में स्पष्टरूप से कहा है। इसलिए प्रकृत में सर्वज्ञ सर्व शक्तिमत् प्रधान ही सर्व जगत् का कारण है, और इसी प्रधान का बोधक सदेवेत्यादिक वाक्य है।' यह हुआ पूर्वपक्षवादी का अभिप्राय ॥

सूक्ष्मस्थूलजीवाजीवमपञ्चजालस्य कारणत्वं, न तु तदतिरिक्तस्याचेतनस्य प्रधानादिपरमाणुस्वभावादेरिति विचारयिष्यति।

तत्रापि पञ्चमसूत्रादारभ्य द्वादशसूत्रान्तात्मकेक्षत्यधिकरणेनानुमानिकसांख्यमतप्रतिपादितसत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थालक्षणप्रतिक्षणपरिणतशीलाऽव्यक्ताऽपरनामकप्रधानस्य जगत्कारणत्वं चेतनत्वादिस्यादिविचारं सपरिकरं करोतीति। अन्तः विचारणीयपञ्चमाधिकरणे "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" (हे सौम्य श्वेतकेतो ? इदं नामरूपाभ्यां विभक्तं जड़चेतनात्मकं जगत् अग्रे स्वोत्पत्तेः पूर्वकाले सदेवासीत्, सदात्मकब्रह्मस्वरूपमेवाभवत्, तच्च सदेकं-सजातीयद्वितीयरहितं चाभवत् ब्रह्मतादात्म्यापन्नमेवाभवन्न तु कार्याकारेण विभक्तमिवाभवदिति श्रुत्यर्थः "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय"। तत् कारणावस्थं चेतनमैक्षत' विचारं संकल्पं कृतवान् यद-हमेकोऽपि बहु अनेको भवेयम्, अर्थात् अपरित्यजन् एव कारणात्मकतां कार्याकारेण

इस पूर्वपक्ष को निराकरण करने के लिए वृत्ति कार अहते हैं—"अत्राभिधीयते" इत्यादि "सदेव सौम्ये"त्यादि श्रुतिवाक्य प्रधान में कारणता का प्रतिपादन नहीं करता है, क्योंकि—"तदैक्षत" इत्यादिस्थल में ईक्षतिपद का श्रवण है। संकल्प तो चेतन का धर्म है, न तु जड़ात्मकप्रधानादिक का धर्म। अयंभावः, अनुमानगम्य सांख्याभिमत जो प्रधान सत्त्वादिगुणों का समुदायात्मक है, वह "सदेव सौम्येदम" इस वाक्य में सत्पदवाच्य नहीं है। अत एव वह प्रधान जगत् का कारण नहीं हो सकता हैं, क्योंकि—"तदैक्षत" इस श्रुति में ईक्षति पद का प्रयोग है, ब्रह्म चेतन है उसमें संकल्प संभवित होने से वही कारण है,प्रधान अचेतन में संकल्प तो सर्वथा असंभवित है। अर्थात् "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" यहाँ से लेकर "तदपोऽसृजत" एतत्पर्यन्त सृष्टिवाक्य में जो जगत् का कारण है उसमें ईक्षणात्मकधर्मका

परिणतो भवेयमिति श्रुत्यवयवार्थः)। यदस्मिन् कारणवाक्ये सदिति पदं दृश्यते तत् चेतने एव कारणतां समर्पयति, यद्वा प्रधाने कारणतां समर्पयतीति वादिविप्रतिपत्तेः संशयो जायते। तदनन्तरम् यत् परिणामि तदेव परिणमते यथा क्षीरं परिणतं सदेव दधि भवति, इह तु चेतनं ब्रह्म न परिणामि तस्य कथमिव जगत् परिणामलक्षणं भवेत् स्वरूपतो ब्रह्मणोऽपरिणामित्वस्य स्वीकारात्। प्रधानन्तु स्वरूपगुणाभ्यां परिणामि इति तदेव जगतः कारणं स्यात्, तदेव चेह कारणश्रुतौ सत्पदेन संगृहीतं भवति, न तु चेतनम्। यद्यपि कारणान्तरवाक्ये सर्वज्ञत्वमपि कारणे श्रुतमस्ति, तच्च सर्वविषयकज्ञानवत्त्वात्मकसार्वज्ञ्यं तु प्रधाने नास्ति, तस्य जडत्वात् परमपुरुषस्य तु चेतनतया सार्वज्ञ्यं संभवतीति चेतनमेवोपादानं नाचेतनं प्रधानमिति। तथापि ज्ञानं तु सत्त्वगुणात्मकम् "सत्वात्संजायते ज्ञानमि"-ति स्मृतेः। सत्वगुणस्य च प्रधानसंबन्धित्वात् तेन रूपेण कथंचित् प्रधानेऽपि तत्संभवादिति पूर्वपक्षाशयः॥ एतादृशं पूर्वपक्षाशयं

श्रवण है, और ईक्षण तो चेतनात्मककर्तृक है। इसलिए चेतन रूप जो ब्रह्म है, वही जगत् का स्वतंत्र कारण है, जड़ात्मकप्रधान स्वातंत्र्येण जगत् का कारण कथमपि नहीं हो सकता है, परन्तु ब्रह्मात्मक रूप से तथा ब्रह्म के अधीन होकर परसुखार्थेक्षितरूप से आंशिक रूप से वह भी कथंचित् कारण होता ही है। अतएव "तदधीनत्वादर्थवत्" १।४।३ ब्रह्मसूत्रमें एवं "अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्" इस श्रुति में ब्रह्म के अधीन होकर प्रधान को जीवव्यतिरिक्तजगत् के प्रति आंशिक कारणत्व का प्रतिपादन किया है। ऐसा हुआ तब अचेतन प्रधानको अचेतनांश जगत् के प्रति कारणत्व होने पर भी चेतनाचेतनसाधारणसूक्ष्मस्थूलसाधारण सकलजगत् के प्रति तो कारणता नहीं है। ब्रह्म तो स्वरूपतः एवं तेजःप्रभृति सकल जगत् का कारण है, क्योंकि सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट है, इसलिये और "अस्मान्मायी" इत्याद्यनेक श्रुति के अनुरोध से सत्पदवाच्य ब्रह्म आत्म-

मनसि समाधाय तदुत्तरयितुमाह "अत्राभिधीयते" इति "सदेव सौम्य" इत्यादिकारण-वाक्यस्थं सत्पदं न प्रधानस्य वाचकमपितु चेतनस्यैव वाचकं यतः कारणवाक्ये संकल्पार्थकेक्षतिपदस्य श्रवणात् संकल्पो हि चेतनस्य धर्मो भवति, नहि भवति कदाचिदपि प्रतीति-र्यद् घटः संकल्पयति, तस्मात् संकल्पधर्मपरिगृहीतं चेतनमेव कारणं न तु जडात्मकं प्रधानं जगतः कारणमिति । यद्यप्यचेतनेऽपि नद्याः कूलं पिपत्सति या तुमिच्छतीत्यादिस्थले औपचारिकः प्रयोगस्तथापि मुख्यार्थसंभवे गौणी कल्पना गौण्येव भवतीति । सूत्रार्थस्तु इत्थम्-अशब्दम् आनुमानिकं प्रधानं सांख्यपरिकल्पितं न कारणं कुतः ईक्षतेः कारणवाक्ये सङ्कल्पार्थकेक्षतिपदश्रवणात्, संकल्पश्च चेतनस्य धर्मो भवति, नतु सर्वथा जडस्येति सदेवेत्यादिसत्पदवाच्यं चेतनं परमात्मैव कारणम्, न तु तदतिरिक्तं प्रधानमितिदिक्, विस्तरस्तु श्रीरामानन्दाचार्यभाष्यतोऽवगन्तव्यः ॥५॥

शब्दादिवाच्य परमात्मा ही प्रधानद्वारा सकल जगत् का उत्पादक होता है। उसमें भी जलादि सृष्टि में तथा अवान्तरसृष्टि में स्व में सूक्ष्मरूप से अव्याकृतनामरूपद्वारा अवस्थित सभी पदार्थों का व्याकृतनामरूपात्मक सृष्टि को करते हैं। ऐसा हुआ तब अचेतनमात्र को प्रधानकार्य होने से विकारित्व होने से विकारित्वादि दोष प्रधान में ही पर्यवसित होता है, ब्रह्म तो सर्वथा निर्विकार ही है, ऐसा सिद्ध होता है। इस विषय को आचार्य प्रवरश्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ने श्रौतसिद्धान्तबिन्दु में "विकारश्च रामो दयाब्धिस्तथात्वे" इत्यादिप्रबन्ध में किया है विशेषार्थियों को वहीं से अवगत करना चाहिये इत्यादि उत्तरपक्ष का आशय है। इस विषय के सम्बन्ध में विस्ताररूप से विचार आनन्दभाष्यादि सांप्रदायिकग्रंथ तथा आचार्यपरंपरा से जानना चाहिये। मैं ने केवल वृत्तिग्रंथ के अक्षरार्थाशय को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है ॥५॥

गौणश्चेन्नात्मशब्दात्।१।१।६।

ननु 'तत्तेज ऐक्षत' "ता आप ऐक्षन्त" (छा० ६।२।३।) इतीक्षण व्यपदेशवदचेतने प्रधानेऽपीक्षण व्यपदेशो गौण एव स्यादिति चेन्न, 'एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो (छा ६।८।७।) इत्युत्तरत्र सच्छब्दाभिहितस्यैवात्मशब्देन व्यपदेशात् । एतदनुरोधेन 'तत्तेज ऐक्षत' इत्यादावपि तेजशरीरकस्य परमात्मन एव ग्रहणम् ।६।

विवरणम्-अथानुमानिकस्य प्रधानस्य जगतः कारणत्वं न संभवति, यतः कारणे ईक्षितृत्वधर्मस्य श्रवणात् तादृशं चेक्षणवत्त्वमचेतनस्यन संभवतीत्यतश्चेतनः परमात्मैव जगतः कारणमिति 'ईक्षते र्ना शब्द' मिति पञ्चमसूत्रेण प्रतिपादितम् । तत्र मृतप्रायस्याखो गौमयाघ्राणेन पुन रुज्जीवनवत् पुनः सांख्यवादी शङ्कते, नायमभ्युपगमः सम्यक्, यतःकारणे श्रूयमाणमीक्षितृत्वं गौणं न तु मुख्यम्, यथा नदीकूलस्य प्रत्यासन्नता मालक्ष्यकूलं पिपतिषतीति अचेतनेऽपि कूले पतनेच्छावत्त्वं गौणमारोपितं भवति, तथैव सदेवेत्यादि वाक्ये सङ्कल्पोऽपि प्रत्यासन्नकार्योन्मुखे प्रधाने एव गौणः सङ्कल्पः। श्रुतावपि मृदब्रवीदित्यादि स्थले तथा प्रयोगो दृश्यते। एतादृश पूर्वपक्षिणामाशयमाकलय्य तन्मतनिरासाय षष्ठसूत्रमवतारयितुमाह वृत्तिकारः—ननु तत्तेज ऐक्षत इत्यादि । तत्तेज

सारबोधिनी—पंचमसूत्र में कहा गया कि-प्रधान जगत्का कारण नहीं हो सकता है क्योंकि कारणमें ईक्षण धर्मका श्रवण है । ईक्षण चेतन का धर्म है और वह अचेतन प्रधान में संभवित नहीं है, इत्यादि युक्तिओं से प्रधानमें जगत् कारणता का निराकरण किया गया । परन्तु ईक्षण मात्रसे चेतन में कारणत्व सिद्ध नहीं हो सकता । तथा हि—तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त (उस तेज ने ईक्षण संकल्प किया उन जलने संकल्प किया) इत्यादि स्थल में अचेतन जल तेज में ईक्षण धर्म का श्रवण हो रहा है । उसी प्रकरण के समान इस प्रकरण में एवं उसके साहचर्य से "सदेव सौम्येदम्"

ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त:,, तत्पूर्वोक्तं तेजः अर्थात्तेज शरीरक ब्रह्म ऐक्षत ईक्षणं सङ्कल्पमकरोत् तथा आपो जलानि ऐक्षन्त समकल्पयन् इत्यादि स्थले अचेतने तेजः प्रभृतिषु पदार्थेषु गौणमीक्षणं भवति तद्वत् अचेतनमपि प्रधानं तथापि तादृशाचेतने सत्पद बोध्ये गौणमेवेक्षणं संभविष्यति। ततश्च सङ्कल्प बलेन यत् कारणवाक्ये परमात्मग्रहणं भवति, तन्न युक्तम् अपि तु गौणमीक्षणमादाय प्रधानमपि जगतः कारणं संभवत्येवेति पूर्वपक्षः। तन्निराकरणायाह वृत्तिकारः—इति चेन्नेत्यादि। एतत् परिदृश्यमानं जडचेतनात्मकं जगत् ऐतदात्म्यम् परमेश्वरस्य रूपमेव हे श्वेतकेतो! तत् सर्वकारणं परमात्मा जड़चेतनशरीरकः सत्यः परमार्थतः सत्यः तथा स परमात्मैव आत्मा सर्वेषामात्मभूतः त्वमपि तादृश एव सर्वशरीरक परमात्माश्रृत एवेत्यादि छान्दोग्यीयाग्रिमप्रकरणे सदेवसौम्येत्यादि कारणवाक्यघटक सत्पदेनप्रतिपादितस्य वस्तुनः कथनात् तदनुरोधात् तत्तेज ऐक्षत इत्यादि वाक्येऽपि तेजः शरीरकस्य परमात्मन एव ग्रहणात्। अर्थात् आत्मशब्दो हि चेतनस्य वाचको न तु अचेतनस्य वाचकः। चेतन श्च श्वेतकेतुः तादृश चेतनस्य आत्मा परमात्मैव सत्पद वाच्यो न तु तदात्मकं प्रधानं संभवति अतः समान प्रकरणे वर्तमानः परमात्मैव

यहाँ भी जो सत् में ईक्षण है वह गौण है। अतः सत्पद बोध्य सांख्यकल्पित अचेतन प्रधान में भी ईक्षित्व की उपपत्ति हो सकती है, तब प्रधान को ही जगत् कारण मानना समुचित है। एतादृश आशंका का निराकरण करनेके लिये सूत्र के उत्थान पूर्वक पूर्वपक्ष को वृत्तिकार बतलाते हैं "ननु तत्तेज ऐक्षत इत्यादि" "तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त" उस तेज ने ईक्षण किया उन जलों ने ईक्षण संकल्प किया इत्यादिस्थल में अचेतन जल तेज में जिस प्रकार से गौण ईक्षण व्यवहार है उसी तरह अचेतनानुमानिक प्रधान में भी गौण ही ईक्षण व्यवहार होगा तथा प्रधान में जगत् कारणता की सिद्धि भी होगी। आप लोग भी "अस्मान्मायी

सत्पदवाच्यो न तु गौणार्थमादाय प्रधानस्य ग्रहणमुचितम् । तथाऽचेतने प्रधाने सचेतनस्य श्वेतकेतोस्तादात्म्य प्रतिपादनं सर्वथैवा सङ्गतं स्यात् तस्मात् 'तत्तेज' इत्यादि स्थलेष्वपि सतः परमात्मन एव ग्रहण मिति । सूत्रार्थस्तु अचेतनयोरपि जलतेजसोः 'तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त" इत्यादि श्रौतस्थलेऽपीक्षणं यथा गौणमवदृष्यते नहि जले तेजसि च मुख्यमीक्षणं सम्भवति । अनेनैव प्रकारेण सदेवेत्यादि वाक्येऽपि सत्-पद बोध्ये सांख्यपरिकल्पिताचेतने प्रधानेऽपि संकल्पो गौण एव भवेत् । ततश्च प्रधानमेव सर्वजगतः स्वातन्त्र्येण कारणं भवतु न तु परमात्मनि जगतः कारणतेति चेन्न कुतः? आत्मशब्दात् । अर्थादिदमीयोत्तरवाक्येषु चेतनबोधकात्मशब्दस्य प्रयोगदर्शनात् तथाहि सदेव सौम्येदमग्र आसीदित्यारभ्य तत्तेज ऐक्षत इत्याद्यन्तप्रकरणेन पृथिव्यप्तेजसां सृष्टिं प्रतिपाद्य तानि चाग्रिम वाक्ये तदेव सत्पदबोध्यं संप्रत्येकं देवतापदेनानुकृष्य कथयति "सेमं देवतैक्षत" "हन्तमहमिमास्तिस्त्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति" इत्यादि श्रुतिषु जीवेन सह मुख्य स्य सतः तादात्म्यं दर्शयति, न चेदं तादात्म्यं चेतनाचेतनयोः सम्भ वति, किन्तु चेतनस्य जीवस्य चेतनात्मकेन परमात्मना सर्वशरीरकेणैव

सृजते इत्यादि श्रुतियों के अनुरोध से तो कारणता प्रधान में मानते ही है, तब स्वातन्त्र्येण गौण ईक्षण धर्म का स्वीकार कर सम्पूर्ण जगत् की कारणता स्वतन्त्र रूप से प्रधान में ही मानिये, अपरिणामी परमेश्वर की जगत्कारणता का प्रतिपादन किस तरह से करते हैं? एतादृश पूर्वपक्ष के उत्तर में वृत्तिकार कहते हैं इति चेन्न इत्यादि । ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो" यह परिदृश्यमान चेतनाचेतन सर्वपदार्थ परमात्मस्वरूप है और वह परमात्मा सार्वदिक सत्य हैं हे श्वेतकेतु तुम भी तादृश सर्वशरीरक परमात्मा श्रुत होने से तत्स्वरूप ही हो । इसके आगेके प्रकरण में सत्पद का

संभविष्यति, तस्मात् सदेवेत्यादि वाक्ये कारणरूपेण परमात्मन एव ग्रहणं न्याय्यं न तु जडस्य प्रधानस्य, चेतनाचेतनयो स्तादात्म्यानुपपत्तेः ईक्षणमपि मुख्यमेवग्राह्यं न तु गौणम्। अर्धजरती न्यायस्यानुचितत्वात्। यदि कुत्रचिदचेतनेऽपीक्षणं दृष्ट्वा कथयसि गौणमीक्षणं न तत्रापि जलाद्यचेतने तदीक्षणं, किन्तु अन्तर्यामित्वेन प्रतिपादितपरमात्मनो जडाजडशरीरवतः सर्वशेषिण एव तदीक्षणम्। जलादावन्तर्यामितया तस्य सर्वनियमनकर्तृत्वं तु शास्त्रे प्रसिद्धमेव। तथाहि "यस्तेजसि तिष्ठन्तेजसोऽन्तरोऽयं तेजो न वेद यस्य तेजःशरीरं तेजसोऽन्तरोयमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः योऽप्सुतिष्ठन्तदापोऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोऽन्तरोयमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः" "यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदु र्यस्य सर्वाणि भूतानिशरीरम्"। तथा "ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (गी.१८-६१) इत्यादि श्रुतिस्मृति पुराणादिषु तथा श्रवणात्। परमात्मनस्तेजःप्रभृतिषु तदन्तर्यामित्वेन परमेश्वरशरीरित्वेन तेजः प्रभृतीनां च परमात्मनः शरीररूपेण श्रवणादीक्षणादेः शरीरधर्मत्वस्य श्रुति–युक्तिभ्यां बाधावगमात्तेजः प्रभृत्यन्तरयामित्वेन समवस्थितस्य परमात्मन एव मुख्य

वाच्य जो अर्थ है उसका आत्मशब्द से प्रतिपादन किया है, और आत्मा शब्द चेतन परक है इससे सिद्ध होता है कि—चेतन में ही ईक्षण धर्म है नकि जड प्रधानमें। और जिसकिसी भी स्थल में अचेतन में ईक्षण का श्रवण होता है वहां भी उन वाक्यों का उपक्रमस्थ वाक्य के अनुसार ही अर्थ करना चाहिए। यथा "तेज ऐक्षत, इस वाक्य का यह अर्थ है कि–तेज है शरीर जिसका एतादृश परमात्माने ईक्षण किया तो तेजशरीरावच्छिन्न परमात्मा का ही ग्रहण होता है। न तु जडीभूत विशेषणांश में ईक्षण है अपि तु विशेष्यांश परमात्मा में ईक्षण मुख्यरूप से है। एवं आत्मा वा इदमग्रे इस वाक्य का तथा 'सदेव'

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ।१।१।७।

इतश्च न प्रधानं सत्पदवाच्यम् । यतः सत्पदवाच्यात्मनिष्ठस्य विदुषः "तस्यतावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये" विदेषः (छा०६।१४।२) इति ब्रह्मसम्पत्तिरूपो मोक्ष उपदिश्यते । यद्यत्र सच्छब्देन केवलं प्रधानमेवोच्येत तर्हि तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशो न स्यात् । नह्यचेतनप्रधानोपासनेन मोक्षोपलब्धिः सम्भवति ॥७॥

मोक्षणाख्यो धर्म इति व्यवस्थितत्वात् प्रकृते सदेवसौम्येत्यादि सत्पदवाक्येष्वपि सत्पदवाच्यस्य सर्वशरीरकस्य परमात्मन एव मुख्यमीक्षणम् । नतु जडात्मके प्रधाने तदीयकार्ये वा ईक्षणरूपो धर्मः सम्भवति ।

क्वचित् क्वचिदचेतनेऽपि ईक्षणव्यपदर्शनात् गौणमीक्षणं परिग्रहीतव्यं मुख्यं वेक्षणं परिग्रहीतव्यमिति भवति संशयः । ततश्च तेषामपि वाक्यानां वेदत्वेन प्रामाणिकत्वात्तदनुकूलत्वेन गौणमेवेक्षणं परिग्रहीतव्यं तेनापि प्रकृतोपयोगित्वस्य सिद्धिर्जायत एवेति पूर्वः कल्पः । तथापि "गौणः मुख्ययो र्मुख्य एव कार्य सम्प्रत्ययः" इति न्यायेन तथा परमेश्वर कारणत्वेऽनेकश्रुतिस्मृतिपुराणादि स्वरसेन च मुख्यमेवेक्षणं परिग्रहीतव्यमिति वैदिकोऽयं राजमार्गः । गौणमार्गस्तु प्रतिकूलत्वात् श्रुतिसूत्रविरुद्धत्वाच्चाग्राह्यमेवेतिसंक्षेपः ॥६॥

विवरणम्—ननु, सदेव सौम्येदमग्र आसीदित्यादि कारणता प्रतिपादक वाक्यघटकसत्पदम्, स आत्मा तत्वमसि इत्यादि समानार्थकवाक्यघटकात्मशब्दप्रयोगबलात् । मुख्येक्षण कर्तृपरमात्मपरकमेव नतु प्रधान इत्यादि वाक्य का समानार्थक होने से एक वाक्यता करने पर सत्पदवाच्य परमात्मा में ही मुख्य ईक्षण सिद्ध होता है । अतः उसी में कारणता है, प्रधानादिक अचेतन में नहीं इति संक्षेप ॥६॥

सारबोधिनी— "सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्" इत्यादि छान्दोग्यलक्षणकारणताबोधक जो सत्पद है, वह "अयमात्मा तत्वमसिश्वेतकेत

परकमिति षष्ठसूत्रे प्रतिपादनेन ज्ञायते, परन्तु तन्नयुक्तं यतोह्येकमेवात्मपदमात्मनस्तथात्म सम्बन्धिनः प्रधानस्यापि बोधकं स्यात्। यथा आत्मनि आत्मशब्दप्र योगस्तथा आत्म सम्बन्धिनि प्रधानेऽपि स्यात्। प्रधानमात्मनः सर्वार्थकरि तदुक्तम्, सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः सैव पुरुषार्थं प्रति विशिनष्टि पुनः प्रधान पुरुषान्तरंसूक्ष्म, मिति। बुद्धिरेव पुरुषस्य सर्वोपभोग साधयति तथा सैव मोक्षमपि साधयतीति पुरुषस्य सर्वार्थसाधके प्रधानेऽपि सम्भवेदेवात्मशब्दप्रयोगः। लोकेऽपि उपकारि पुरुषे आत्मशब्दप्रयोगो यथा 'ममात्मा भद्रसेनः' इत्यादि स्थले। तस्मात्केवलमात्मशब्दप्रयोगबलेनात्मीयस्य प्रधानस्य निराकरणं न सम्भवति, इत्यादि शङ्कानिराकारायाग्रिम सूत्रस्यावतरणमाह वृत्तिकार इतश्च प्रधानं न सत्पदवाच्यमित्यादि, अयं भावः, तन्निठस्यमोक्षोपदेशादि ति। अत्र सत्पदवाच्य परमात्मनिष्ठोपासकस्य शिष्यस्य मोक्षोपदेशः श्रूयते,; स च मोक्षोपदेशः प्रधानस्य कारणवाक्यघटक सत्पदवाच्यत्वे कथमपि न सम्भवति; किन्तु यदि सत्पदवाच्यः परमात्मास्यात्तदैव परमात्मोपासनयोपासन कर्तु मोक्षः स्यात्। स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषिणः। यदुपास्ति मसावत्र परमात्मा निरुप्यते इन्याद्यभियुक्तोक्त स्थले परमात्मन उपासनयैव मोक्षप्राप्तेः कथनात्।

इत्यादि अग्रिम समानार्थक वाक्यके समानार्थक होने से तद्घटक आत्मपद के अनुरोध से परमात्मपरक है, तादृशपरमात्मा सत्पदवाच्यमुख्य ईक्षणवान् है, तथा वही परमात्मा जगत्का उपादान कारण भी है, ऐसा निश्चित किया है, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि— आत्मा शब्द का अर्थ जिस प्रकार आत्मा होता है, उसी तरह आत्मा सम्बन्धी मैं भी होता है, तो प्रकृत में आत्मा का सर्वथा उपकारक प्रधान भी आत्मपद बोध्य हो सकता है, जीवात्माको जो कुछ शब्दादि पदार्थ का उपभोग होता है, उसका निदान कारण प्रधान है, तथा वही प्रधान अति सूक्ष्म प्रधानपुरुषका भेद ज्ञान कराकर मोक्ष का भो

नत्वचेतनोपासनेन मोक्षो भवती ति कुत्रचिदपि प्रतिपादितम् । तस्मात् सत्पदवाच्यः परमात्मैव, न तु परमात्म सम्बन्धि प्रधानं प्रधानकार्यं बुद्धया दिकं वेति । तथाहि छान्दोग्ये, सदेव सौम्येदमग्र आसीदित्यादिना उपक्रमं कृत्वा "अनेन सौम्य शुङ्गेनापोमूलम न्विच्छ । इत्यारभ्य सन्मूला सौम्येमाः प्रजाः सर्वा सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः, इत्यत्र सत्पदवाच्य परमात्मन एव सर्वप्रजामूलत्वेन प्रजायाउत्पादकत्वप्रजाया आयतनत्वेन प्रजास्थितिकारणत्वं तथा सर्वप्रजाप्रतिष्ठात्वेन सर्वप्रजाप्रलयकारणत्वं च दर्शयित्वा पुनरपि श्रावयति "अस्य सौम्य पुरुषुस्य प्रयतो वाङ् मनसि– तेजः परस्यां देवतायां; स य एषोऽणिमा,, इत्यादिस्थले पूर्वप्रकृतं सत्पदप्रतिपाद्यं परदेवताशब्देनाणिमशब्देन च तमेव संगृह्य तदनन्तरम् "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसिश्वेतकेतो" इहापि स आत्मा एवं रूपेण पूर्वप्रकान्तस्य सत्पदवाच्यस्य चेतनस्य परमात्मन एव पूनरपि संग्रहः कृतः । एतत्परि दृश्यमानं सर्वं तदात्मकमित्यनेन सम्पूर्णस्य स्थावरजङ्गमात्मकसर्व जगतः सदात्मकत्वं विज्ञाप्य, तत्वमसि श्वेतकेतो, अनेन चेतनस्य श्वेत केतोरपि सदात्मकत्वोपदेशेनसदात्मनित्यतैव प्रतिपादिता । तदनन्तर

प्रयोजक बनता है । अतः कारण वाक्य घटक सत्पद प्रधान का ही बोधक है, तथा प्रधान ही जगत का कारण भी हैं ।

इसप्रकार जो पूर्वपक्ष होता है, तादृश पूर्वपक्ष का निराकरण करने के लिए सप्तम सूत्र का उत्थान करते हुए कहते है–इतश्चप्रधानमित्यादि । इन वक्ष्यमाण हेतुओं से सिद्ध होता है कि सांख्यपरिकल्पित स्वतंत्रप्रधानकारणवाक्यघटक सत्पदवाच्य नहीं हो सकता क्यों कि सत्पदवाच्य जो परमात्मा है उस परमात्मामें निष्ठा रखने वाले विद्वान् को अर्थात् – जो उपासक परमात्मा की उपासना करता है, उसको परमात्मोपासना के परिपाक होने पर मोक्ष प्राप्ति का उपदेश शास्त्र करता है । कौन

सत्परमात्मकत्वेन तथा परमात्मव्याप्यत्व रूपेण प्रत्यगात्मानुसन्धान निष्ठस्योपासकस्य शिष्यस्य 'आचार्यवान् पुरुषो वेद, इतिक्रमेण तस्यतावदेव चिरम्, इति कथनेन मोक्षोपदेश श्रूयते श्रुतौ ततश्च पूर्वक थित परमात्मविषयकतत्वज्ञानवतः पुरुषस्य, 'तत्त्वमसि' इत्याद्यु पदेशेन जायमानं परमात्मना सह स्वस्य तस्याऽहमित्याकारकाभेद लक्षणतादात्म्यज्ञानमेव मोक्षायालं, न तु उपदेष्टव्यस्याचेतन प्रधानादिना सह जायमानं तादात्म्यज्ञानं मोक्षजनकं स्यात् । प्रत्युता चेतनेन सह जायमानं तादात्म्य ज्ञानं संसारायैव भविष्यतीति महदनि-ष्टमापतेत्, तथा एतादृशमभेदज्ञानमुपदिश च्छास्त्रं गुरुरपि कथमिव प्रामाण्यं प्राप्नुयात् ?

तस्मात्कारणवाक्यघटकं सत्पदमात्मपदश्च चेतनं लक्ष्यीकृत्य परमात्मानं बोधयति न तु कदाचिदपि आत्मनः सर्वार्थसाधकं प्रधानं तदतिरिक्तं वा बुद्ध्यादिकंमवगमयतीति सूत्रवृते: संपिण्डितोऽर्थः सम्पद्यते शास्त्र युक्तिसिद्धः ।

ऐसा शास्त्र है जो परमात्मोपासक को मोक्षप्राप्ति बतलाता है, एतादृश जिज्ञासा के उत्तर में वृत्तिकार बतलाते हैं—"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये ऽथसम्पत्स्ये" जो उपासक साधन चतुष्टय वैराग्यादि से सम्पन्न होकर भक्ति प्रपत्ति के द्वारा भगवान् साकेताधिपति की अनवरत उपासना करने में संलग्न है, उस उपासक को संसार सागर पार करने में तब तक ही विलम्ब होता है, जब तक कि प्रारब्ध कर्म से प्राप्त वर्तमान शरीर का पतन नहीं होता। प्रारब्ध कर्म फलोपभोग के बाद वर्तमान शरीर पात के अनन्तर वह उपासक सत्पदवाच्य परमात्मामें सम्पन्न हो जाता है(अर्थात् साकेतप्राप्ति लक्षणसायुज्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता हैं) उपर्युक्तवेद वाक्य ब्रह्म सम्पत्ति रूप मोक्ष का उपदेश करता है । इस स्थिति में सांख्य की श्रद्धा को अनुसरण कर यदि सत् शब्द केवल प्रधानवाचक मान लिया जाय तब तो प्रधान की उपासना संलग्न उपा-

सूत्रार्थस्त्वेवम्–तस्मिन् सत्पदवाच्ये परमात्मनि चराचरजगत् कारणे श्रीरामे निष्ठा अवस्थानं जातं यस्य अथवा तस्मिन् उपासना जाता यस्य तादृशस्योपासक पुरुषस्यैव "तत्त्वमसि" "अथ सम्पत्स्ये" इत्यादिना मोक्ष प्रतिपादनात् तत्पदवाच्यः परमात्मैव न तु परमात्म सम्बन्धि प्रधानादिकं सत्पदवाच्यमिति ।

यद्यपिवृत्तिग्रन्थोऽति रोहितार्थ इवाभाति, तथाऽप्यक्षरार्थमात्र विवृणोमि, इतश्च वक्ष्यमाण हेतुभिरपि सदेवेत्यादि कारण वाक्य घटकं सत्पदं न सांख्य परिकल्पिताचेतनप्रधानस्य बोधकमपि तु सर्वशरीरकस्य परमात्मनो जगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणस्य विज्ञापकम् । प्रधानं सत्पदवाच्यं न भवतीति प्रतिज्ञा मात्रेण कथितम्, न च केवलं प्रतिज्ञा साधिका, अपि तु व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टहेतुरेव बोधकः । तदुक्तम् सम्भावितः प्रतिज्ञायां पक्षः साध्येत हेतुनेति अतो हेतु प्रदर्शनायाह-यतः इत्यादि । यतः–यस्मात् कारणात् सदेव सौम्येदमित्यत्र सत्पदवाच्यो

सक को जो मोक्षोपदेश किया गया है, वह अनुपपन्न हो जायगा । क्योंकि अचेतन जो प्रधान है, तादृश प्रधान की उपासना से तो मोक्ष की प्राप्ति कथमपि संभवित नहीं है, अपितु चेतन सर्वसमर्थ परमात्मा की उपासना से ही मोक्ष सम्भवित हैं । प्रकृत विषय को प्रस्थान त्रयानन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी ने निम्नरूपसे उपदेश किया हैं श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर में "एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात् । महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्य वै ॥ उपाधिनिर्मुक्तमनेकभेदका भक्तिः सयुक्ता परमात्मसेवनम् । अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा महर्षिभिस्तै स्वलुतत्परत्वतः । सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतेः सन्तानरूपेशि परानुरक्तिः । भक्तिः विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गा ॥इति।

इस विषय में आचार्य उदयन ने भी कहा है

"स्वर्गापवर्गयो र्मार्ग मामनन्ति मनीषिणः ।
यदुपास्ति मसावत्र परमात्मा निरूप्यते ॥

यः परमात्मा तद्विषयकोपासनायुक्तस्यैव विदुषो मोक्षमुपदिशति । "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये" इत्यादि शास्त्रम् (तस्य भक्तिप्रपत्तिभ्यां परितोषित परमात्मन उपासकस्य तावत्कालमेव विलम्बो जायते, यावत्पर्यन्तं प्रारब्धकर्म समुपस्थापित देहस्य विमोक्षणं न भवति अथ शरीरपातानन्तरं तु सम्पत्स्यते साकेताधिपसायुज्यमित्यर्थः)

एवं चोपदेष्टव्यस्योपासकस्य चेतनत्वात्तस्य, आत्मस्वरूपतयो पदिश्यमानमुपसंहारमात्मपदं कथमिवाचेतनमुपदिशेत् । नहि चेतनस्यात्मभूतमचेतनं स्यात् । यदातु उपसंहारस्थकारणताबोधकमात्म पदं न बोधयत्यचेतनं कारणं तदा कैव कथा उपक्रमस्थं सत्पदमचेतनं बोधयिष्यति ? उपक्रमोपसंहाराभ्यामेव श्रुत्यर्थनिर्णयस्य निर्धारणात् । तत्रश्चोपसंहारे श्रूयमाणं पदं यदा चेतनपरमेश्वरपरकं तदोपसंहारानुरोधादुपक्रमे विद्यमानं सत्पदमपि सर्वकारणभूतं परमात्मानमेव बोधयति न कथमपि क्लिष्टकल्पनयोपस्थापितमचेतनं प्रधानम् । मोक्षोपदेशा

(स्वर्ग के समान जो जीवन मोक्ष तथा परम मोक्ष का मार्ग अथवा स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग जिस परमात्मा की उपासना को तत्त्व वेत्ता पुरुष प्रतिपादन करते हैं तादृश परमात्मा का निरूपण इस प्रसूनाञ्जलि प्रकरण में मैं करता हूँ) इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि– चेतन सर्व समर्थ परमात्मा की उपासना ही मोक्ष का जनक है । इसप्रकार अचेतन प्रधान की उपासना करने से मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा तो कहीं भी नहीं प्रतिपादन किया गया । इसलिए "सदेव सोम्येदमग्रे" इत्यादि वाक्यों में जो सत्शब्द है, वह परमात्मा का ही बोधक है आनुमानिक सांख्य परिकल्पित प्रधानका बोधक नहीं है ।

"तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्" इस सूत्र का यही उपर्युक्त अर्थ होता है । संक्षिप्त अभिप्राय यह है कि अचेतन की उपासना से मोक्ष होता है, इसप्रकार शास्त्र में नहीं बतलाया गया है और परमात्मा की उपासना से मोक्ष प्राप्त

हेयत्वाऽवचनाच्च १।१।८।

इतश्च प्रधानाद्भिन्नं सत्पदवाच्यम्। यदि प्रधानमेव सत्पदाभिधेयं स्यात्तर्हि मोक्षप्राप्तये तदात्मत्वेनानुसन्धानं नोपदिशेत्, अपि तु मोक्ष विरोधीत्वेन हेयत्वमेवोपदिशेत्. नह्यत्र तथोपदिश्यते ॥८॥

न्यथानुपत्त्या परमात्मैव सत्पदवाच्यो न कथमपि प्रधानं सत्पदवाच्य मिति वेदान्त डिण्डिम इति। एतदेव दर्शयति वृत्तिकारः "यद्यत्र सच्छब्देनेत्यादि" यदि समुपस्थापित श्रुतौ स्वतन्त्रं प्रधानमेवोपस्थापितं भवेत्तदा अचेतन प्रधानोपासकस्य मोक्षोपदेशो न सम्भवेत् न ह्यचेतनस्य प्रधानस्योपासनया मोक्षप्राप्ति र्भवतीति शास्त्रे क्वापि श्रुतमुपपद्यते नवा कदाचिद् युक्त्यावेति, प्रत्युताचेतनोपसनं संसारफलायैव भवति न तु मोक्षफलायेति संक्षेपः ॥७॥

वृत्तिविवरणम्– "एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इत्यत्र हेयत्व वचनाभावान्नसच्छब्द वाच्यं प्रधानम्। यदि तदेव स्यात्तदा तदनात्म तत्वं त्वं नासि, अतस्तदात्मकत्वेनात्मानं नानुसंधत्स्व, तदनुसंधानस्य मोक्षविरोधित्वादित्येवं माता पितृ सहस्र वत्सल होता है, इस बात को शास्त्र ने बारंबार अनेक स्थलों में प्रतिपादित किया है अतः आनुमानिक प्रधान सत्पदवाच्य नहीं है किन्तु सर्वेश्वर सर्वसमर्थ भगवान् साकेताधिपति जिनके भ्रूभंगविलास मात्र से जगत् के उत्पत्ति स्थिति विनाश होते हैं, वे ही कारण वाक्यघटक सत्पद वाच्य हैं। और वे ही केवल भक्तो से समुपासनीय हैं। इस विषय पर विशेष जिज्ञासु श्रीमदानन्द भाष्यका अवलोकन करें।

सारबोधिनी–ज्ञेयजो परमात्मा है वह तो "अणोरणीयान्" एषोऽणुरात्म "वालाग्र शतभागस्य"(अणु रूप से अभीमत जो परमाणुप्रभृतिक पदार्थ हैं उससे भी अधिक अणु अर्थात् परमसूक्ष्म हैं। यह आत्मा अणु है, वाल का जो

तरेण परमहितानुशासनपरेण वेदेनोपदिष्टं स्यात्। यथारुन्धतीं दिदर्शयिषुस्तत्समीपस्थताराणां हेयत्वं स्पष्टं निर्दिशति तद्वदिहापि स्यान्न च तथा दृश्यते।

अथ परमसूक्ष्मं परमात्मतत्वंसर्वैरप्यभीप्सिततमम्। तादृशं च तत्त्वम् "अणोरणीयान्" "एषोऽणुरात्मा" वालाग्र शतभागस्यशतधा कल्पितस्य च "सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं पदम्" "यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्यमनसा सह" "तंदूर्दर्शंगूढमनुप्रविष्टम्" इत्यादि श्रुतिशतैस्तस्यातिसूक्ष्मतयावोधितं तादृशंञ्चसूक्ष्मतत्त्वमविशुद्धान्तःकरणं श्वेतकेतुं प्रथमतो ग्राहयितुं न शक्यमिति तादृशसूक्ष्मतत्त्वसंबद्धं प्रधानं यत् परमतत्वापेक्षया किंचित्स्थूलमिवविद्यते, तादृशप्रधानतयेवात्मरूपेण सर्वप्रथमं ग्राह्यते श्वेतकेतुर्गुरुणापरमकारुणिकेन। यथाऽति सूक्ष्मामरुन्धतीं तारां दर्शयितुं प्रथमोऽरुन्धत्याः समीपे स्थितां तदपेक्षया किंचित्स्थूलां तारामेवेयमरुन्धीति दर्शयति बालकं तदीयहितचिन्तक स्तथैव प्रकृते ज्ञेय यत्तत्त्वंतदतीवसूक्ष्मं प्रथमतस्तदीयज्ञानमशक्यमिव ज्ञात्वा परमतत्व-समीपस्थितं परमतत्त्व- संबद्धपरमतत्वा

अग्र भाग, उसका भी शतांश भाग न्यून परिमाण परिमित आत्मा हैं) इत्यादि श्रुति प्रभृतिक शास्त्र से ज्ञान होता है कि—ज्ञेयतत्त्व अतिसूक्ष्म है। तो सहसा सूक्ष्म वस्तु का प्रति पादन करने से शिष्य को यथा वत् ज्ञान नहीं होगा। अतः सूक्ष्मतत्व के समीपवर्ती तदपेक्षया किंचित्स्थूल जो प्रधान है उसी का आत्म रूपसे शास्त्र प्रतिपादन करता हैं। जैसे अतिसूक्ष्म तारा को समझाने के लिये तत्समीपवर्ती स्थूल प्राय अन्य तारा को समझाया जाता है तद्वत् प्रकृत में भी समझना चाहिये। एतादृश शंकाका निराकरण करने के लिये वृत्तिकार सूत्र का उत्थान करने के लिये कहते है इतश्च प्रधानाद्भिन्नं सत्पदवाच्यमित्यादि। इस कारण से वक्ष्यमाण जो कारण है उस से भी सिद्ध होता है कि— "सदेव सौम्येदमग्र,, इत्यादि वाक्य घटक जो सत्पद है उस का वाच्य अर्थ प्रधान सांख्य मतकल्पित आनुमानिक पदार्थ से

पेक्षया जड़त्वेन किंचित्स्थूलमिवावभासमानं सांख्यमतकल्पितमानुमानिक प्रधानमेवात्मरूपतया शास्त्रं बोधयति न तु परमसूक्ष्मंपरम तत्त्वं बोधयति शास्त्रमशक्यत्वात् । अतोऽरुन्धतीय न्यायेन प्रधानस्यै-वात्मरूपेण बोधनं भवतीतिपूर्व पक्षाभिप्रायं ज्ञात्वा तादृश शंकामपनेतुं सूत्र-काराशयप्रकटनाय सूत्रमुदाहर्तुमाह वृत्तिकारः इतश्च प्रधानाद्भिन्नं सत्पदवा-च्यमिति । इतो वक्ष्यमाणहेतुनापि प्रधानमानुमानिकं न सत्पदवाच्यम् । कुतो न सत्पद वाच्यं प्रधानं तत्र हेतुं विनिर्दिशति सूत्रकारः हेयत्वाव-चनात् । सूत्राशयं प्रकटयति वृत्तिकारः "यदि प्रधानमेव सत्पदाभिधेयं स्यादि-त्यादि, यदि कदाचित्प्रधानमेव प्रकृत सत्पदेनाभिधीयमानम-भिमतं शास्त्रस्य भवेत् तदा निरतिशय सुखात्मकमोक्षस्य प्राप्त्यर्थं तस्-यात्मरूपेण कथनं न कुर्यात् । प्रत्युतानात्मदृष्टेर्मोक्षविरोधित्वेन प्रधा-नस्य हेयतामेव ब्रूयात् । ननु प्रकृते सत्पदवाच्यस्य हेयतां प्रतिपादि-तवान् । अर्थात् यदि प्रकृतेऽनात्मतास्यात्तदा अनात्मज्ञानस्य मोक्षजनक त्वाभावात् मोक्षाय प्रवर्तमान उपदेशः पुनस्तद्व्यतिरिक्तं किमप्यात्म

भिन्न सर्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वमहिमामात्र से चिदचिद्विशिष्ट सकल स्थूल जगत् का उपादान तथा निमित्त करण है, प्राधन नहीं यदि कदाचित् तुष्यतु दुर्जनन्याय से सत्पदवाच्य प्रधान ही होता तब तो मोक्षयितव्य जो चेतन श्वेतकेतु है उसको मोक्ष प्राप्ति के लिए उस जड़ चेतन प्रधान में आत्म रूपसे अनुसन्धान करने का उपदेष नहीं किया जाता क्योंकि तुम अचेतन प्रधान स्वरूप हो इस कथन से प्रधानोपासना में तत्पर उस शिष्य को तादृश जडोपासना से मोक्षप्राप्ति असंभव है । प्रत्युत तादृश अचेतन में चेतन को तादृश उपासन तो संसार की जनि का होगी यह समझ कर उस अचेतन में हेयता का ही कथन करना उचित होता है, परन्तु तादृश हेयत्व का कथन नहीं किया है। जैसे सूक्ष्म अरुन्धती को समझाने के लिए एकाएक प्रथमत अरुन्धतो का उपदेश न देकर पहिले

तत्वं विनिर्दिशेत् पूर्वस्मिन् हेयतामुपपादयेत् परन्तु नात्र प्रथमत उपदिष्टस्य हेयतामवदत्। अतः प्रधानं न सत्पदवाच्यमपि तु परमात्मैव सत्पदवाच्यः। परमात्मज्ञानस्य मोक्षजनकत्वमिति सर्वश्रुति सूत्र स्मृति पुराणानुमोदितः पन्थाः। अयं भावः यदि कदाचिनात्मभूतं प्रधानमानुमानिकमेव सत्पदमभिलप्यमनुमतं भवेत् "एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इत्यादि शास्त्रे तदेवपूर्वोदितं वस्तूपदिष्टं स्यात्। सचेतनः श्वेतकेतुस्तदुपदेशश्रवणेनानात्मज्ञतया अनात्मोपासको न भवतु इति कृत्वा मुख्यं यत सत्सूक्ष्मं चेतनात्मकं परमात्मतत्त्वं तादृश तत्त्वस्योपदेशाय पूर्वोपदिष्टस्यानात्मतत्त्वस्य परित्याज्यतां प्रदर्शयेत्। यथा अतिसूक्ष्मामरून्धतीतारामुपदिदिक्षुः प्रथमतोऽरून्धती समीपवर्तिनीममुख्यामेवतारामरून्धतीति दर्शयित्वा पुनरमुख्यामरून्धतीं प्रत्याय्य मुख्यलक्षणामरून्धतीं प्रतिपादयति तद्वत् प्रकृतेऽपिशुद्धान्तः करणव्यक्तिभिर्ग्रहणासमर्थस्य सूक्ष्मतत्त्वस्यामुख्यतत्त्वमुपदिश्य मुख्यं तत्त्व

अरुन्धती के समीपस्थ अरुन्धती संबद्ध अमुख्य तारा का उपदेश देकर उससे उसका निराश करके मुख्य अरुन्धती का उपदेश किया जाता है, और अमुख्य तारा को हेयता का प्रतिपादन किया जाता है, इसी प्रकार प्रकृत में अमुख्य सत्पद—वाच्य प्रधान में हेयता का कथन करना उचित होगा परन्तु हेयता का प्रतिपादन तो नहीं किया है। इससे यह सिद्ध होत है कि कारण वाक्यमें प्रधान से भिन्न ही पदार्थ सत्पद वाच्य है, न कि प्रधन सांख्य परिकल्पित सत्पद वाच्य है। एवं सूत्र—घटक जो च शब्द है सो प्रधान को सत्पद—वाच्य मानने पर प्रतिज्ञा—विरोध लक्षण— दोष का भी कथन करता है। तथा हेयत्व वचन—रूप दोष का रहते हुए ही प्रतिज्ञा का विरोध होता है प्रधान को सत्पद वाच्य कहने में, क्यों कि—कारणके विज्ञान से सर्व विज्ञान की प्रतिज्ञा की गई है आत्मादेशामप्राक्ष्यो येना श्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवति इत्यादि से लेकर यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन

मेवोपदिशेत् प्रथमोपदिष्टतत्त्वं ज्ञेयत्वेन प्रत्याख्याय। न तु तथा कृतवान् शास्त्रेऽतो ज्ञायते यत् न प्रधानस्य सत्पदवाच्यतयेहोपदेशोऽभिमतोऽपि तु मुख्यस्यैवतत्त्वस्योपदेशोऽभिमतः। आत्मज्ञानं च मोक्षजनकं न तु जड़ ज्ञानं मोक्षजनकमिति सर्वेषामपि वादिनां प्रक्रिया।

अत्र सूत्रघटकश्चकारः प्रतिज्ञाविरोधात्मकं कारणमपि संगृह्णाति तथाहि उततमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः! स आदेशो भवतीति यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वंमृन्मयं विज्ञातमित्यादि छान्दोग्ये श्रुतम्, वाक्यस्य प्रारम्भ-समये अर्थात् कारणविज्ञानेन समस्तस्य कार्यस्य विज्ञानं भवति, तद्यदि चेतनं सर्व-कारणं विज्ञानं स्यात्तदा तादृशसर्वचिदचित्कारणलक्षणपरमात्मविज्ञानेन तं चिदचिदात्मकं सर्वमपि कार्यं विज्ञातं स्यादिति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा अविघ्नितरूपेण समर्थिता भवेत्। अथ यदि प्रधानं सत्पदवाच्यं तस्य सर्वजगत् कारणत्वं च स्वीक्रियेत तदा जड़ात्मककार्य विज्ञातेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं भवति,इत्यन्त वाक्य के प्रारम्भ में सुना गया है। परन्तु भोग्यवर्ग का कारण प्रधान यदि हेयत्व रूप से अथवा अहेयत्वरूप से विज्ञात होने पर उस प्रधान का कार्य भोग्यवर्ग है वही केवल जाना जायगा, किन्तु भोक्ता जो जीवराशि है सो तो नहीं जाना जायगा क्योंकि—कारण में जो कार्य जाना जायगा जीवराशि वह प्रधान का कार्य तो है नहीं। इस लिये प्रधान इस प्रकरण में सत्—शब्द का वाच्य नहीं है किन्तु परमात्मा ही सत्पदवाच्य हैं। नहीं कहो कि—जिस तरह गोमय जड से चेतन वृश्चिकों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार जड प्रधान से चेतन की उत्पत्ति होगी यथा वा दुग्धकलश में प्रक्षिप्त जल विन्दु दुग्धज्ञान होने से ज्ञातहोता है, उस तरह प्रधान तथा प्रधान का कार्य शरीरेन्द्रियादि से :ओत प्रोत जीव भी प्रधान के ज्ञान होने पर तत्सम्बद्धजीव भी ज्ञात हो जायगा, तब तो प्रतिज्ञा—विरोधरूप—दोष नहीं होगा तो यह भी कहना ठीक नहीं है, क्यो कि